* श्रीः *

विराड् विवरणम् ।

अर्थात्

सगुण ब्रह्मरूपनिरूपणम् ।

श्रीमत्सरयूपारीण पण्डितधुरीण
महाकुलीन श्रीमधुकरसत्सन्तान
विविधविद्याचमत्कारपार-
ङ्गमत्रिपाठिश्रीरामानन्द
शर्मविरचितम् ।

तथाच

तदीयवंशसम्भूतत्रिपाठिश्रीनारायण
पतिशर्मकृतभाषा पद्यानुवाद-
समन्वितम् ।

काशीस्थ-अर्जुनयन्त्रालये मुद्रितम् ।
सम्वत् १९९० ।

91456

---

* श्रीशौवन्दे *

* श्रीगणेशाय नमः *

अथ श्रीविराड्विवरणं प्रारभ्यते।



निर्विशेषं परं ब्रह्म, सविशेषं निसर्गतः ।
तस्यैव धारणारूपं, चिन्त्यते श्रुति सम्मतम् ॥ १ ॥

अथ शुद्धस्वान्तानां जिज्ञासूनां चित्ता-वलम्बनार्हं मैकान्तिकात्यन्तिक त्रिविधदुःखा घाता भावरूपं शुद्धस्वरूपं निरुप्यते (क) तच्च

अद्वैतं द्वैत मापन्नं, विशिष्टाद्वैत मद्भुतम् ।
अर्द्धनारीश्वरं ब्रह्म, नुमो हरिहरात्मकम् ॥ १ ॥
साम्बं शिवं नमस्कृत्य, रामानन्दविनिर्मिते ।
विराड्विवरणे भाषा-टीके यं तन्यते मया ॥ २ ॥

निर्विशेष पर ब्रह्म कहावै, सविशेष सो होत स्वभावै ।
कछुक धारनारूप विचारौं, श्रुति संमत मन संशय टारौं ॥१॥
अतिशय शुद्ध हृदय जे होहीं, जाना चहैं ब्रह्म कहँ सोहीं ।
चित्तकेर अवलंबन जोगू, एक अनेक त्रिविध दुख भोगू ॥
तिहि अघातकर होय अभाऊ, शुद्धस्वरूप निरूपन चाऊ ।
व्यास आदि मुनिगन जो कहहीं, ताहि भले धरि राखहु मनहीं।

"आसुप्ते रामृतेः कालं, नये द्वेदान्तचिन्तया।
दद्यान्नावसरं कञ्चि, त्कामादीनां मनाग पि" । (तथा)
"स्मर्त्तव्यः सततं विष्णु, र्विस्मर्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्यु, रेतयो रेव किङ्कराः ॥"
इत्यादि व्यासवचना दावश्यकम्।

चिन्तनीयस्य विष्णो रूपद्वयम् (ख)
"ब्रह्मरूपद्वयं शुद्धं, निर्गुणं सगुणं तथा।
निर्गुणं हि गुणातीतं, सगुणं सद्विशेषणम् ॥"
इत्यादि श्रीगौडपादकृत-योगसंहितावचनात्।
तत्र जाति-क्रिया-गुण-सम्बन्धशून्यस्य निर्गुणस्य

जबलों नहिं नींदहि हौ परते, अथवा जगमें कछु जीवन थाई,
तबलों धरिटेक सदा मनमें, परब्रह्म विचारहिमें लगि जाई।
परचंड महारिपु काम वगैरह,-को मति औसर देवहु भाई,
मनमाँहिविचारकरोअपने,जगजन्मलिये करका फलपाई(तथा)
सदा सुमिरिये विष्णुको, कबहुँ विसारिय नाँहि।
सबविधि और निषेधहू, इनके किंकर आँहिं ॥
व्यास वचनते यह अवशि, चिंतनीय है बात।
द्वैतरूप किमि होत है, ब्रह्म यहै बतलात ॥ (ख)
ब्रह्म रूप दुय शुद्ध हैं, निर्गुन सगुन कहात।
निर्गुन सब गुन रहित है, सगुन विशेष लखात ॥
गौड पाद कृत योग की, कह्यो संहिता माँहि।
सीधे सादे बचन के, अर्थ बिचारे जाँहि ॥

ब्रह्मणः—"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सहे—"
त्यादि श्रुतिभि र्लक्षितस्य ध्यानासम्भवात् ।
सगुणस्यापि—"विष्णोर्नुकं वीर्य्याणि प्रवोचं यः
पार्थिवानि विममे रजांसि—" इत्यादि श्रुतिभिः । (ग)
"असित गिरिसमंस्या त्कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्र मुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणाना मीश ! पारं न याति ॥"

जाति-कर्म-गुण को नहीं, जहँ तनिकौ सम्बन्ध ।
निर्गुन ते वानी फिरै, मन नहिं पावत गन्ध ॥
वेदौ जब अस कहत है, करै कौन विधि ध्यान ।
याते निर्गुन ब्रह्म पै, कछु नहिं सकत बखान ॥
निर्गुन तौ दूरे रहौ, सगुनौ किमि कहि जाय ।
कहौं विष्णु कै वीर्य किमि, पार्थिव रजहि बनाय ॥
यहु वेदकै वचन है—(ग) (अब महिम्न सुनि लेहु).

स्मृति समान जो मान्य है, कछु कम मति करि देहु ।
कज्जल कज्जल-पर्वतको करि, सज्जल सिन्धु बनै मसिदानी,
लेखनि कल्प तरूनकी डारिन, पत्र यहाँ पृथिवीहि बखानी ।
लेकरिके इनको निसि वासर, तो गुन लेखन माँहि सिरानी,
पार न पाइसकी जब शारद, ईश ! तबै अतिसै अकुलानी ॥

जाके दिव्य अनन्त गुन, भरे परे न लखाँहि ।
तिनकी गनती किमि करौं, सोचहु निज मनमाँहि ॥

इत्यादि-स्मृतिभिश्च दिव्यानन्तगुणत्वेन प्रतिपाद्यस्य सम्पूर्णगुणगणनासम्भवात्। (अतः) कथञ्चित्कतिपयै रेव गुणै र्जगद्रूपं सगुणं ब्रह्म विचार्य्यते। तत्रापि गङ्गासुगमैकतीर्थपाथो व्यवहार न्यायेन विराड्रूपेण विचार्य्यते। (घ)

स्वपावनार्थ मेव पिपीलिका स्नानाद्युत्तरवत्। एवञ्च पञ्चाशत्कोटियोजनमित सावकाशं ब्रह्माण्डमेव गृहम्।
"अण्डमध्यगतः सूर्यो, द्यावाभूम्यो र्यदन्तरम्।
सूर्याण्डगोलयो र्मध्ये, कोट्यः स्युः पञ्चविंशति-"
रित्यादिप्रमाणकम्। गर्भोदसंज्ञकेनो दकेने षन्न्यूनेन

तब कवनौ विधि सोचिकै, जे कछु गुन समुझात।
थोड़े बहुते उनहिं ते, सगुन ब्रह्म बिचरात॥
सुगम घाट से जाइ कै, गङ्गा ते जल लेत।
यही न्याय को मानिकै, कछु विचार कहि देत॥
विश्वरूप जो सगुन है, धरत विराट सरूप।
तिहि ध्याये बिनु जीव यह, परत अंध भव-कूप॥ (घ)
धरत ध्यान पावन करत, यही प्रयोजन मान।
करै पिपीलिका स्नान जिमि, तैसहि उत्तर जान॥
जोजन कोटि पचास मित, सावकास ब्रह्माण्ड।
सगुन रूप कै गृह वही (मानहु एकहि भाण्ड)॥
अण्डमध्यगत सूर्य हैं, द्यावा भूमा छोर।
अण्ड गोल अरु सूर्य में, होत पचीस करोर॥

पूरितार्द्धं, तस्योपर्य्युपरि—पाताल १ रसातल २ महातल ३ तलातल ४ सुतल ५ वितला ६ तलान्य धस्तात्सप्त । (ङ)

भूर्भुवः २ स्व ३ र्महः ४ जनः ५ तपः ६ सत्याः ७ ऊर्द्धतश्च सप्तेत्येवं चतुर्दश—"ब्रह्माण्डमध्ये तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दशे ।" त्यादि-विद्यारण्य वेदान्तात् ।

"करस्थं सरसं ग्रासं त्यक्त्वा कूर्प्परवादनम् ।" इत्यादि न्यायस्या न्याया दत एतेष्वे व वस्तु प्रतिपत्त्यर्थ मुपासनाऽऽरभ्यते । "सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीते—" त्यादि श्रुतिभिः सर्वस्य

यह प्रमान ते जानिए, ताहि पचास कडोर ।
गर्भो·दक संज्ञक कछुक, जलते पूरित थोर ॥
तेहि पर प्रथम पताल, तदनु रसातल २ जानिए ।
फेरि महातल३ खाल (तलातल)४सुतल५ वितल६ अतल ७ हुतरे(ङ)

भू भुव स्वर्मह जन तप सत्या, सात लोक ऊपर के मत्या ।
एहि विध चौदह भुवन गिनाए, ब्रह्म अण्ड भीतर जे छाए ॥
विद्यारन वेदान्त बखाना, यह प्रसिद्ध सब ठौर प्रमाना ।
करके सरस ग्रासको त्यागी, काँख बजावत वृथा अभागी ॥
यह नहिं समुचित नीति गोसाईं, करि बिचार देखहु सब ठाईं ।
वस्तु सिद्धि होत इन माँही, उपासना बहुभाँति कराँही ॥

यह सब निश्चय ब्रह्म, शान्त उपसिय तज्जलान् ।
जो भाषत श्रुति खम्भ, ताते बड़ न प्रमान कछु ॥

जगतो ब्रह्म तादात्म्यप्रतिपादनद्वारा निन्दादिराहित्येनो पासनाया अपि उक्तत्वात् । (च)
गृहविस्मृतरत्नादे रन्यत्रा न्वेषणस्या न्याय्यात् । गंगा तरलतरंगेष्वेव सर्पसिकतातया भासमानेष्व पि गंगा त्रिमूर्त्येकतममूर्तिलाभस्य दर्शना च्च, दृढ़निश्चयेन इन्द्र-माण्डव्यादीना मवस्तुष्व पि कट्वग्निशूलप्रान्तरूपेषु सुख समाधीनां प्राप्तिदर्शनात् । किं पुनर्वस्तुनीति ।
"मुक्ताभिमानी मुक्तो हि, बद्धो बद्धाभिमान्य पि ।
किम्वदन्ती हसत्ये वं, या मतिः सा गति र्भवेत्" ॥

इत्याद्यष्टावक्रवाक्यात् । (छ)

सकल जगत कै ब्रह्महीं, एक आतमा होत ।
निन्दाकै कछु ठाँव नहिं, कह्यो उपासना सोत ॥ (च)
घर के भूले रत्न को, ढूढ़ै अनतहिं जाय ।
यह तो उचित बुझात नहिं, सोचहु मनमें भाय ॥
गङ्गा तरल तरङ्ग में, सर्पहु सिकता भास ।
तस त्रिमूर्ति में एकतम, मूर्ति लाभ को आस ॥
दृढ़ निश्चय बस इन्द्र अरु, मांडव्यादि अनेक ।
कठिन अग्नि सुली चढ़े, सहे दुःख धरि टेक ॥
जब अवस्तु दुख में लहे, सुख समाधिकै लाभ ।
तब फिर बास्तव वस्तु में, कहाँ दिखात अलाभ ॥
मुक्ताभिमानी मुक्त है, बद्ध बद्ध अभिमानि ।
हँसति कहावत यह सही, जस मति तस गति जानि ॥
यह अष्टावक्रकी बानी, (जे ऋषि गन में अतिशय ज्ञानी) (छ)

"अज्ञस्य दुःखौघमयं, ज्ञस्या नन्दमयं जगत् ।
अन्धं भुवन मन्धस्य, प्रकाश न्तु सचक्षुषः ॥
चिद्विलासः प्रपञ्चोऽयं, सेव्यते दुःखदः कथम् ।
कि मिन्द्रवारुणी राम ! सितया कटुकी कृते" ॥

इत्यादि वशिष्ठ वचना च्च । दुःखौघमय मविद्यामयं । आनन्दमयं सुखब्रह्मस्वरूपम् । (ज)

१ तत्र पातालं पादतलम् ॥ १ ॥

लोकेषु पातालस्याङ्गेषु पादमूलस्य च सर्वाधोवर्तमानत्वसाम्यात् । ध्यानन्तु पादत एवारोहिण्या रोहणन्यायात् । भक्त्यतिशयेन शिष्टाचारात् ।

होत अज्ञ हित जग दुखदाई, विज्ञन लगि आनन्द बढ़ाई ॥
अन्ध भुवन अँधिआरै जानै, देखन हार प्रकासहि मानै ।
है प्रपंच चैतन्य विलासा, काहे सेवत दुःखद आसा ॥
इन्द्रवारुनी लता नहिं कवौं, तजै तिताई गुड़ मिलै तवौं ।
दुखसुख साना जगत विकासा, कह्यो वसिष्ठ मुनि आतम भासा।
दुःख ओघमय माया-खेला, सुख आनंद ब्रह्म कै मेला ।
अब विराट रूप भगवन्ता, जाको आदि मध्य नहिं अन्ता ॥
सगुन विश्वरूप है जोई, महिमा जासु कतहुँ नहिं गोई ।
समुझहिं सुजन ब्रह्म जिज्ञासु, कहत जथामति विवरन तासु (ज)
(१) तहाँ पताल पाद तल गावा, १ जिमि सब लोकन तरे सुहावा
तिमि तरवा सब तनु तर सोहै, दूनो एक समानहि जोहै ॥

"सञ्चिन्तये द्भगवत श्चरणारविन्दं,
एकैकशो ऽङ्गानि धिया विभावयेत् ।
पादादि याव द्धसितं गदाभृतः,
जितं जितं स्थान मपोह्य धारयेत् ॥
परं परं शुद्धयति धी र्यथा यथा,"—
इत्यादौ प्रथमत श्चरणध्यानस्यै वो क्तत्वा च्च ।
पातालादि मनूद्य श्रीभगवत्पादतलाद्य भिधीयते ।
"ब्रह्मदृष्टि रुत्कर्षा"—दिति वैयासिकसूत्रात् ।
"पाताल मेतस्यहिपादमूल"-मित्यादिपुराणाच्च ।
किञ्चे यं दृष्टिः समष्टिवद् व्यष्टा वपि,पिण्ड-ब्रह्माण्डयो

ध्यानहु चरन कमल ते होई, तरते ऊपर चढ़ सब कोई ।
भक्ति बढ़ाय शिष्ट अस करहीं,तिहि कारन चरनै मन धरहीं ॥
भले चिंतिए नाथकै, चरन सरोरुह चाहि ।
एक एक करि अंगके, बुद्धि विचारिय ताहि ॥
लै पदते हसितावधी, मनमें धारिय रूप ।
जहँलों पहुँचे ताहि सो, ऊपर चढ़ै अनूप ॥
जिमि जिमि बुद्धि शुद्ध ह्वै जावै, तिमि तिमि चित्त रूप बैठावै ।
इहते प्रथम चरन कै ध्याना कह्यो पताल पदतल भगवाना ॥
"ब्रह्मदृष्टि उत्कर्षसे"—व्यास सूत्र परमान ।
पादमूल भगवंत कै, पातालहि को जान ॥
यही दृष्टि औरहु सब भाँती, है समष्टि सम व्यष्टि विभाती ।
पिंड ब्रह्म-अण्डहु यह दोऊ, अहै एकही अन्य नहिं कोऊ ॥

रैक्यात् । अथवा, बिम्बमण्डनं प्रतिविम्बस्ये ति— न्यायेनेश्वरे यादृशी दृष्टि जींवेन क्रियते तादृश्येव स्वस्मि न्नपि फलती त्ययं सिद्धान्तोऽग्रेऽपि सर्वत्र ।

रसातलं पादोपरि भागः ॥ २ ॥

तस्यो परि सन्निहित त्वात् । निवात कवचस्य पादस्य निवातकवचस्थानत्वेन तुल्यत्वात् । "पार्ष्णि प्रपदे रसातल" मित्यादि व्यासवाक्याच्च ।

पिशाचाः पादांगुल्यः ॥ ३ ॥

पिशाचानां देवशूद्रत्वात्, शूद्राणाञ्च पादोत्पन्नत्वा दीषन्मालिन्य साम्यात् । "पादाङ्गुल्यः पिशाचाश्चे" ति हरिवंशाच्च ।

जथा बिंब मंडित किये, प्रतिबिंबहु तस होय ।
जीव दृष्टि जस ईश पै, निज लगि तस फल सोय ॥
आगेहू सब ठौर पर, यहि सिद्धांतै मान ।
भले विचारिए बात सब, जहँ लगि मति अनुमान ॥
(२)पादहि पीठ रसातल होई २कारन तिहि पर सोहत सोई ।
होत चरन तल रच्छित जासो, रहत निवात कवच सम तासो
तहाँ प्रमान व्यासकी बानी, (३)सबपिसाच पद अँगुरी जाना।३।
देवन में वे शूद्र कहाये, शूद्र पाद उत्पन्न बताये ।
कछुक मलिनता दोष दिखाई, पादांगुली पिसाच अस गाई ॥
श्री "हरिवंश" ग्रंथ अस कहई, जो "भारतमें" भागवइ अहई ।

गजा-श्वा-श्वतरो-ष्ट्राः चरणनखाः ॥४॥

अङ्गुल्यग्रोपरि संलग्नत्वात्, भारवाहकत्वेन युद्ध कर्त्तृत्वेन च काठिन्यसाम्यात्, शूद्राधीन-गजादीना मिवाङ्गुल्यधीनत्वात्। "अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानी" ति व्यासा च्च।

महातलं गुल्फभागः ॥ ५ ॥

रसातलोपरिसन्निहितत्वात्। "महातलं विश्वसृजो ऽथ गुल्फा—" विति श्रीभागवता च्च।

तलातलं जंघे ॥ ६ ॥

गुल्फस्थानीय महातलोपरिसन्निहितत्वात् । महा-

---

(४)हाथी घोड़ा खचर ऊँटा, इनहि चरन नख जानहु खूँटा ४
अँगुरिन ऊपर ये लगि रहहीं,चहुँदिश बोझा ढोवत फिरहीं।
जुद्ध करत बहु काम सँवारैं, धरत कठिनता तुल्य सुधारैं ॥
शूद्र अधीन गजादिक होवैं, तिमि नख सब अँगुरी बस जोवैं।
घोड़ा खचर ऊँट गज, नख समान पहिचान ॥
कह्यो व्यास मुनि आपुही, जनते बड़ न प्रमान।
(५)गुल्फ भाग सम सोइ महातल,तगिचे नीचे रहत रसातल।
विश्वरूपकै गुल्फै दोऊ, कह भागवत महातल होऊ ॥
(६) तलातलहि जंघा करि जानो,गुल्फ महातल ऊपर आनो।
जहाँ वेगसाली बलवंता, रहत मयादिक असुर महंता ॥

जववता म्मयादीना न्निवासात्—“तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे—” इति व्यासवाक्या च्च ।

सुतलं जानुनी ॥ ७ ॥

तत्संलग्नोपरि दैत्यकुलोत्तुङ्गस्य महाबलस्य बले र्निवासात् । “द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेः—” इति श्री भागवता च्च । तदुपरि—

वितल मूरू ॥ ८ ॥

कामासक्तयो रनिशं संयुक्तयोः शिवयो र्निवासात् । “ऊरुद्वयं वितलं कामगेह—” मिति नारदपञ्चरात्राच्च ।

क्षणादिवत्सरान्तः कालो गमनक्रिया ॥ ९ ॥

कालस्य गमनशीलत्वात्, वस्तूना मुपमर्दकत्वात् । “गतिर्वय—” इति श्रीभागवता च्च ।

महापुरुष कै जंघा सोई, कहत तलातल जेहि सब कोई ।
(७)सुतलहि जानु जानुनी दोऊ, बसत महाबल बलि जहँ सोऊ
सुतलै विश्वमूर्ति कै जानू, कहत भागवत अस परमानू ॥
(८)वितलहि ऊरू दुय सम होई, कामासक्त रहत शिव सोई ॥

वितलै ऊरू दोय है, काम गेह भगवंत ।
श्रीनारद पँचरात्र से, यह प्रमान भाषन्त ॥

(९) छनते लैकै बरष लौं, गमन क्रिया है काल ।
काल गमन शीलत्व से, सबै वस्तु को घाल ॥
'गति वय–' यह पद जत्र, श्रीभागवतहु कहत अस ।

अतलं पायुः ॥ १० ॥

तदुपरि संलग्नत्वात्, कामित्वेनै न्द्रजालिकत्वेन च मलिनस्य बलदैत्यस्य निवासात् । "अतलन्तु गुदं विद्या-"दिति नारदपञ्चरात्रा च्च ।

तत्रेन्द्रियं मृत्युः ॥ ११ ॥

तद्वारा मृतस्य निरयात् । "पायु र्यमस्य मित्रस्य, परिमोक्षस्य नारद । हिंसाया निर्ऋते र्मृत्यो, निरयस्य गुदं स्मृत-" मिति श्रीभागवता च्च ।

मित्रावरुणौ वृषणौ ॥ १२ ॥

मित्रावरुणयो र्जलाधिष्ठातृत्वात् । वीर्य्यस्य च जलसाम्यात्, वृषणयो स्तदधिष्ठानत्वात् । "क स्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रा-" विति श्रीभागवता च्च ।

तजहु सकल भ्रम तत्र, अब संका को काम नहिं ॥

(१०) अतलहि पायु सटे रहने से, कामिक इन्द्रजाल बननेसे ।
होत मलिन बल दैत्य निवासू, नारद कहे-"अतल गुद" तासू॥
(११) तँहँ इंद्रिय है मृत्यु, तद्वारा अमृत कहत ।
पायू जम अरु मित्र कै, मल त्यागकै द्वार ॥
हिंसा निर्ऋति मृत्यु कै, नरकै गुदहि विचार ॥
(१२) मित्रावरुन वृषन हैं दोऊ, वे जल स्वामी कारन होऊ।
बीरज जल के होत समाना, रहत वृषन महँ सो सब जाना ॥
मित्रावरुन वृषन कहवावैं, श्रीभागवतहु अस बतलावैं ।

प्रजापति मेंढ्रः ॥१३॥

प्रजोत्पादकत्वसाम्यात् ।

वृष्टि र्वीर्य्यम् ॥१४॥

द्रवत्वसाम्यात् । "अपां वीर्यस्य सर्गस्य, पर्जन्यस्य प्रजापतेः । पुंसः शिश्न उपस्थस्तु, प्रजात्यानन्द निर्वृतेः ।" इति श्रीभागवताच्च ।

महीतलं जघनम् ॥१५॥

"पुराणे वर्तुला पृथ्वी, ह्यागमे चतुरश्रिका । ज्योतिश्शास्त्रे त्रिकोणा च, यथाभानं विवर्तत-" इति ज्योतिःशास्त्रोक्तत्रिकोणत्वसाम्यात् । यद्यपि ज्योतिः शास्त्रे गोलाकारा पृथ्वी तथाप्येकदेशसंलग्नसमुद्रादिभिः

---

(१३) मेंढ़ प्रजापति हैं कहि जाते, प्रजासृष्टि करिवेके नाते ॥
(१४)बीरज वृष्टि सृष्टि कै कारन,होती द्रवता प्रकट सधारन ।
ताते वीरज वृष्टि सम होई, सकल सृष्टि कै कारन सोई ॥
पुरुष शिश्न उपस्थहु, करत सृष्टि आनन्द ।
तहँ प्रमान श्रीभागवत, (दिखलावत जिमि चन्द) ॥
(१५)कहतमहीतल जघनसमाना,जोतिषशास्त्र त्रिकोन बखाना
कह पुरान में गोली छोनी, आगम भाषि मही चाकोनी ॥
जोतिष माँहि भूमि तिरकोनी,(हमरे जान मान जनु मोनी) ।
जद्यपि जोतिष मानै गोली, तबहुँ समुद्रादिकते झोली ॥

प्रायेण तथोक्तम् । अतलोपरिसन्निहितत्वात्, गुरुत्वात् "महीतलं तज्जघनं महीपतेः–" इति श्रीभागवताच्च ।

सुमेरो र्दक्षिणतो निषधहेमकूट हिमालयाः उत्तरतश्चनीलश्वेतशृंगिणो दक्षिणवामश्रोणी

आकृति साम्यात्, पृथुत्वात्, गुरुत्वात् ।

"मेरो र्दक्षिणतो ये च, वामतो ये च सङ्गताः ।
निषधादिखण्डकूटाः श्रोण्योः शुक्तीक्रमेण तु ॥"
इति वायुसिद्धान्ता च्च ।

सन्ध्ये वाससी ॥१७॥

द्युतिमदारक्तत्वा दाच्छादकत्वात् । "वासस्तु सन्ध्ये कुरुवर्य्य भूम्न–" इति श्रीभागवता च्च ।

समुद्रो नाभिः ॥१८॥

वृत्तत्वगाम्भीर्य्यत्वसाम्यात्, अम्भोजन्मजनिजनक

रहत अतल के संनिहित, भारोपन प्रकटात ।
याते भूतल जघन है, भागवतहु बतलात ॥
जे सुमेरु के दाहिने, निषध हिमालय आदि ।
वाम सितासित शृंगि जे, ते श्रोनी दुहु बादि ॥
आकृति समता पृथुलता, गुरुतादिक मिलि जाय ।
दै प्रमान वहि वचन कै, वायू निर्णय गाय ॥
(१७) संध्या दूनो बसनसी, चमकत बड़ी रँगीन ।
आच्छादकता को प्रकट करि, वचन भागवत दीन ॥
(१८) अर्नव नाभी है प्रभुकेरा, अति गंभीर वृत्त(गोल) है घेरा ।

जनकत्वेन नाभेः सरस्तुल्यत्वात् । "सरसा मस्मि सागर" इति श्रीमद्भगवद्गीता वाक्या च्च ।

बडवानलो जाठराग्निः ॥१९॥

तदन्तर्वर्तित्वात् । "वाडवो जाठरो वह्निः कल्पे कल्पेऽनुरोधकृत् ।" इति नारदपञ्चरात्राच्च ।

नद्यो नाड्यः ॥२०॥

सर्वासा मपि समुद्रस्थानीयनाभिसम्बन्धात् ।
"ऊर्ध्वं मेढ्रा दधो नाभेः कन्दयोनिः खगाण्डवत् ।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ॥"
इत्यादि योगविवरणात्, वहनशीलत्वात् ।

तहां कमल जन्मा उपजाये, ताते नाभी सर सम गाये ।
हौं सरसन में सागर हमहीं, भगवत गीता वचनहु कहहीं ॥
(१९) है बडवानल जाठर आगी, तिहिके भीतर रहि रसपागी ।
वाडवाग्नि जठरा-नल होई, कल्प कल्प अनुरोध करोई ॥
नारद पंचरात्र की बानी, देत प्रमान शास्त्र मत छानी ।
(२०) नाडी सबै नदी सम बहहीं, नाभि जलधि महँ सब मिलि बँधहीं
मेढ़ ऊपरे नाभि के नीचे, कन्द जोनि खग अंडहु बीचे ।
तहाँ हजार बहत्तर नाडी, भईं जोगविवरन कह गाडी ॥
जितनी रोम कि नाड़ियाँ, तितनी नदियाँ होंय ।
जोग भाष्य कै वचन है, कहत भागवत सोय ॥
गंगा जमुना सुरसति तामे, इडा पिंगला सुषुम्ना जामे ।

"यावत्यो रोमनाड्यःस्यु, नद्य स्तावत्य एव हि।"
इति योगभाष्यात्, "नद्योऽस्य नाड्य–" इति श्री-
भागवताच्च। तासु गङ्गायमुनासरस्वत्यः ईडापिङ्गला
सुषुम्णाः नासास्वरसाम्यात्,

इडा वामे स्थिता भागे, सोमदैवतरूपिणी।
दक्षिणे पिङ्गला ज्ञेया, विष्णुदैवतरूपिणी॥
सुषुम्णा मध्यतो ज्ञेया, ब्रह्मदैवतरूपिणी।
मोक्षदा सर्व जन्तूनां, लभ्येत यदि भाग्यतः॥

इति रुद्रयामला च।

भुवर्लोक उदरम् ॥२१॥

महीतलोपरि सन्निहितत्वात्। "सन्देहो वहुल–"
इति श्रुतेश्च, वहून् भूतादीन् लाति स्थापयतीति

नासा स्वर समानता कारन, (तीनहुकी गति समुझ सधारन)
ईडा वाम भाग में रहती, सोम देवता रूपहि धरती।
रहै पिंगला दहिनी ओरी, विष्णु देव की मूरति घोरी॥
बीच सुषुम्ना सोहति कैसी, ब्रह्म देवता आकृति जैसी।
मिलै भाग्यवश देवै मुक्ती, रुद्र यामलक की यह सूक्ती॥
(२१) भुवर्लोक है उदर समाना, भूतल ऊपर थापित जाना।
"सन्देहो बहुलः" श्रुति भाषै, अर्थ तहां यहि भांति सुराखै॥
बहु भूतन को लाकर थापै, भुवर्लोक 'वहुल' हि है आपै।
सम्यक् देह अर्थ (संदेहा,) नाभी ऊपर भाग वतेहा॥

बहुलोऽन्तरिक्षं भुवर्लोकः, सन्देहः सम्यग् देहो नाभे रुपरिभागः ।

बाडववृद्धिः खण्डप्रलयानलः क्षुत् २२

हुताशनस्य सर्वभक्षित्वात्, "अय मग्नि वैश्वानरो यो य मन्तः पुरुषे येने द मन्न मद्यते—" इत्यादि,

"ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः मृत्युर्यस्यो-पसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।" इत्यादि श्रुतेः । "अत्ता चराचरग्रहणा"— दिति वैयासिकसूत्रात् । "जगद्भक्षकभक्षक"—इति पद्मपुराणाच्च ।

कल्पार्कस्तृट् ॥ २३ ॥

सर्वरसशोषकत्वात् "प्रलयादित्य स्तृड् यस्य सप्त समुद्र पानक—"मिति भविष्योत्तराच्च ।

---

(२२) बाडव वृद्धि छुधा है सोई, खंडप्रलय अनलहि जौहोई ।
होत हुताशन सरवस भोगी, (कछुकछु वस करि राखैंजोगी) ॥
यही अग्नि भीतर रहै, अन्न वही सब खात ।
ब्रह्म छत्र दुय होत हैं, ओदन मृत्यु कहात ॥
श्रुति यह बानी कहति है, ब्यासिक सूत्र प्रमान ।
पदुम पुरानहुमें कह्यो, जग भच्छक नहिं आन ॥
(२३) तृषा कल्प के सूर्य हैं, सब रस शोषक होय ।
कह भविष्य उत्तर तृषा, प्रलय सूर्जहीं सोय ॥

स्वर्लोको वक्षः ॥ २४ ॥

भुवर्लोकोपरिसन्निहितत्वात्, सुखनिधानत्वात्, रत्नमुक्तादिवत्तारामण्डल साम्यात् । "उरःस्थलं ज्योति रनीक मस्ये-"ति श्रीभागवता च्च ।

निवृत्तिप्रवृत्तिरूपौ धर्मौ दक्षिणवामस्तनौ

धर्मस्य सुखसाधनत्वात्, हृदि सत्वात्, "धर्मस्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठ"—इति श्रीभागवता च्च ।

प्रकृति र्हृदयकमलम् ॥ २६ ॥

रक्तश्वेतनीलानां सत्वरजस्तमसां कमलवर्ण साम्यात् । "अजा मेकां लोहित शुक्ल कृष्णा"—मित्यादि श्रुतेः । "अव्यक्त माहु र्हृदय"—मिति श्रीभागवता च्च ।

---

(२४) स्वर्गलोक वक्षस्थल तासू, भुवर्लोक ऊपर करि वासू ।
तहँ विचित्र मणि मुक्ता नाना, तारा मंडल सदा सुहाना ॥
कहै भागवत प्रभुकी छाती, ज्योती मयी सोह सब भाँती ।
(२५) धर्म निवृत्ति प्रवृत्ति सरूपा, स्तन हैं दक्षिण वाम अनूपा
सब सुख साधन धर्म बखाना, सो नित रहत हृदय तहखाना।
कहत भागवत धर्म थन रूपा, पीठ अधर्म पंथ भव कूपा ॥
(२६) प्रभुके हृद्याम्बुज है प्रकृती, सित लोहित नील लखात अकेले
वह सत्व रजोगुन औ तमकै, धरिरूप सरोज समानहि खेले ।
सित लोहित कृष्ण अजा श्रुतिसे पुनि भागवतौ परमान बतेले
तव आत्म पुरान कहै कछु आन नहीं यह बान पुरान झमेले ॥

"माया न्तु प्रकृतिं विद्या न्मायिन न्तु महेश्वरम् ।
इच्छा माया भवत्ये षा, प्रकृतिः सातु पूर्वतः"—
इत्यात्मपुराणा च्च ।

राजसो ब्रह्मा मनः ॥ २७ ॥

ब्रह्मणः कमलासनत्वात्, मनसो ऽपि हृत्कमलाधिष्ठानत्वात् । "इन्द्रियाणां मन श्चा स्मी"—ति श्रेष्ठत्वेन स्रष्टृत्वेन च साम्यात्, "मनो हि जगतां कर्तृ"—इत्यादि बचनात् । "ब्रह्माण मीशं कमलासनस्थ"—मित्यादि श्री भगवद्गीतायाश्च ।

शुद्ध सत्त्वं विष्णुः ॥ २८ ॥

सत्त्वात्मकत्वात्, जगद्धितत्वात् । "विष्णुना पाल्यते विश्व"— मिति व्यासवाक्या च्च ।

मायहि प्रकृती जानिए, मायी हैं भगवान ।
इच्छा माया है वही, प्रकृती पूरव बान [जान] ॥
(२७) रजोगुनी ब्रह्मा मन तासू, ब्रह्माकै कमला–सन वासू ।
मनकै हृदय कमल महँ वासा, सब इन्द्रियमें मन हौंवासा ॥
श्रेष्ठ सृष्टि कारन है सोई, मनहि जगत कर्ता कह कोई ।
ब्रह्म ईश कमला सन वासी, भगवत गीता वचन प्रकासी ॥
(२८)शुद्ध सत्व तहँ विष्णु विचारा, सतोगुनी जग रच्छनहारा
पालत विष्णु जगत यहबाता, कही व्यास मुनि आगम ज्ञाता ॥

कोपो रुद्रः ॥ २९ ॥

तमोमयत्वात्, संहारकत्व साम्यात्। "रुद्रो मन्यु स्तदीय" इति पञ्चरात्राच्च।

चन्द्रः प्रसादः ॥ ३० ॥

सन्तापहारकत्वसाम्यात्, आह्लादकत्व साम्यात्। "प्रसादे सर्व दुःखानां हानि रस्यो पजायत" इति श्रीभगवद्गीतायाश्च।

वशिष्ठो ज्ञानम् ॥ ३१ ॥

वशिषु जितेन्द्रियेषु तिष्ठतीति विव्युत्पत्या ज्ञानसाम्यात्, दन्त्यपाठे ऽपि वसतीति वः अतिशयेन वः वसिष्ठः। सवत्र विद्यमानं ज्ञान मेवोक्तं—"योह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवती—"तिश्रुते श्च।

---

(२९)तिहिकर क्रोध रुद्र भगवाना, तमो रूप संहारक जाना।
नारद पंचरात्र अस गावा, रुद्रहि मन्यु तदीय बनावा।
(३०) तासु प्रसाद चंद्रमा होई, हरत सकल संतापै सोई।
तिहि प्रसाद सब दुःख नसावै, भगवतगीता अस बतलावै।
(३१)है वशिष्ठ ज्ञान सम ताके, रहहिं सकल इंद्रिय वश जाके।
यहिते ज्ञान साम्य बतलावा, दन्त्य वसिष्ठहुकर यह भावा।
बसत विशेष रूपसे जोई, संगरो ज्ञान रहत है सोई।
जो वसिष्ठ सो निजकर ज्ञाना, श्रुतिके वचन तहाँ परमाना।

वायुः प्राणः ॥३२॥

वायो र्जगत्प्राणत्वसाम्यात्, "जगत्प्राणः समीरण–" इति त्रिकाण्डीतः। "प्राण स्तथा नुगमात्" इति शारीरकवेदान्तसूत्रा च्च।

अधर्मः पृष्ठभागः॥ ३३॥

धर्मरूपेश्वरवैमुख्य साम्यात्। "पराभूते रधर्मस्य तमस श्चाति पश्चिम–"इति श्रीभागवता च्च।

मेरुः पृष्ठ दण्डः॥ ३४॥

भूलोक मध्यवर्त्तित्वात्, अतलस्पर्शित्वात्, अस्थि स्थानीयसर्व पर्वत मुख्य त्वात्। "मेरुः शिखरिणा मह–" मिति श्रीभगवद्वाक्या च्च।

---

(३२) वायू तिनकर प्रान है, वहै जगत को प्रान।
जगतहिं प्रान समीरनै, कहत त्रिकांडी जान॥
यह प्रसिद्ध सिद्धान्त, अनुगम हीते प्रान है।
शारीरक वेदान्त,-सूत्र कहत जो व्यास कृत॥
(३३) है अधर्म पीठकै भागा, धर्म रूप प्रभु विमुख विरागा।
जब अधर्म कतहूँ धरिदावै, तम गुन तब पीछे लगिधावै॥
लिखी भागवतकी यह बाता, [तब अधर्मसे करु मति नाता]।
(३४) कहत सुमेरु पीठकै रीढ़ा, कारन भूमि मध्य पर पीढ़ा।
अतल लोकसे जुटिकर रहहीं, हाड़ समान अन्य गिरि सबही
तिनमें मुख्य विशिष्ट यह अहैं, "हौं शिखरिनमें मेरु" प्रभु कहैं।

अन्ये पर्वता अस्थीनि ॥३५॥

काठिन्योच्चत्वसाम्यात्। "गोत्राणा मस्थि संहति" रिति श्रीभगवद्वाक्या च्च ।

महापुरुषस्य प्राङ्मुखस्य पुरःस्थितः पुरुहूतो हस्तौ ॥३६॥

बाहु स्थानीय लोकपाल मुख्यत्व साम्यात्, वज्र करत्वेन काठिन्य साम्यात्,सकल कामद कल्पवृक्षादि फलदातृत्व साम्यात्। "इन्द्रादयो बाहव आहु रुस्रा"—इति, "हस्तयो रिन्द्र आविश"-दित्यादि श्रीभावगताच्च।

अप्सरसः कररेखाः ॥ ३७॥

रेखाणां स्त्रीत्वेना तिसुन्दरत्वात्, कराधिष्ठात्रून्द्रा-

---

(३५)हाड़ समान अन्य सब सैला, तहँ काठिन्य उच्चता फैला।
"सबही सैल अस्थि की संहति", भगवत बानी ऐसहि कहति।
(३६) प्राङ्मुख महापरुषके आगे, बैठे इन्द्र बाहु सम लागे।
लोकपाल सब बाहु समाना, तिन सबमें इंद्र प्रधाना॥
सोहै वज्र कठिन करमाहीं, कल्पवृक्ष इच्छित फल जाँही।
"इन्द्र आदि बाहु भगवंता", 'रहैं हाथमें इन्द्र" समंता॥
ये हू वचन भागवत केरे, (नहिं कपोल कल्पित हैं मेरे)।
(३७)कररेखा अपसरा सुहाती, रेखा स्त्रीत्व हेतु मन भाँती।

धीनत्व साम्यात् । "देव्यस्तु कररेखाःस्यु"—रिति पद्म-पुराणाच्च ।

गुह्यकाः कराङ्गुल्यः ॥३८॥

धन गोपनादिकर्तृत्व साम्यात्, "कराङ्गुल्यस्तु गुह्यकाः"—इति श्रीहरिवंशाच्च ।

यक्षाः करनखाः ॥ ३९ ॥

गुह्यकाना मुपरि वर्तमानत्वात्, क्रौर्य्यादि साम्यात्, "यक्षाः करनखा ज्ञेया—" इति वाराहपुराणा च्च ।

अग्निधर्मराजनिर्ऋत्या ईशानकुबेरवाय-वश्च यथाक्रमं मणिबन्धा दांसं भागत्रय क्रमेण दक्षिणवामबाहू ॥४०॥

पालकत्वसाम्यात्, बलवत्त्वसाम्यात्, "बाहवो लोक-

कर समान इंद्र आधीना, सब सुख कारन कहत प्रवीना ॥
"कर रेखा अपसरा सुजाना", कहत बचन यह पदुम पुराना ।
(३८) गुह्यक गनकर आंगुरी आँही, धन रच्छादिक काम कराँही ॥
"करकी आंगुरि गुह्यकै" श्रीहरिबंश बखान ।
(३९) कर नख यच्छहि होत हैं, गह्यक ऊपर थान ॥
फेरि क्रूरता आदि गुन, दूनो ओर समान ।
"जच्छहिं कर नख जानिए, कहत वराह—पुरान ॥
(४०) अगिन जम नैऋत्य ईशाना, पुनि कुबेर वायू भगवाना ।

पालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम्–" इति स्मृतेः। "बाहू राजन्यः कृत–" इत्यादि श्रुतेश्च।

सृष्ट्यादीनि कर्माणि ॥ ४१ ॥

सृष्टिस्थितिप्रलयानां वृष्टिधनासुहारादिद्वारा इन्द्रादि लोक पालाधीनत्वात्, "कर्मगुणप्रवाह–" इतिश्रीभागवताच्च। गुणप्रवाहः प्राणिना मित स्ततः संसरणं तस्य क्रीडेत्यर्थतः।

ध्रुवौ दक्षिण वामस्कन्धौ ॥४२॥

ध्रुवयोः स्वर्लोकोपरि वर्तमानत्वात्, "दक्षतो वामत श्चैव द्वौ ध्रुवौ गाणके मतौ–" इत्यादि ब्रह्मयामला च्च।

लै मनिबंध यथाक्रम तीनो, दाहिन वाम बाहु परिचीनो ॥
पहिले पालक समता पावैं, पुनि बलवत्ता भले दिखावैं।

"लोक पालके बाहु सब, प्रायः करते क्षेम"।
"छत्री बाहु समान है," पालत सब विधि नेम ॥
स्मृतिके श्रुतिके बचन ये, क्रम ते देत बताय ॥
(४१)सृष्टि आदि सब लोकके, कहत कर्म समुदाय ॥

सृष्टि स्थिति प्रलयादिक कर्मा, वृष्टी धन निधनादिक धर्मा।
लोकपाल इन्द्रादि सुधारैं (अपने साँचामें जनु ढारैं) ॥
"कर्महि गुनप्रवाह" कह व्यासा,इतउत जीव संसरन विलासा ॥
(४२)दक्खिन उत्तरजे ध्रुव दोऊ, स्वर्ग लोक ऊपर रहं सोऊ।
"दहिने बायें कंध समाना" ब्रह्म यामलकू ताहि बखाना ॥

वरुणः ककुत् ॥४३॥

ध्रुवयो मध्ये पश्चिमदिग्वर्त्तित्वात्, "वरुणः पश्चिमे भागे-इति ब्रह्मयामला च्च ।

महर्लोको ग्रीवा ॥४४॥

स्वर्लोकसन्नितोद्र्ध्ववर्त्तित्वात्, "ग्रीवा मह–" रिति भागवता च्च ।

तत्रानाहत एव नादः ॥४५॥

ताल्वोष्ठपुट व्यापाराद्यनपेक्षत्वसाम्यात्, नादो द्विविध आहतोऽनाहतश्च, "तत्रेश्वरोऽनाहतो जैव आहत–" इति सामोपवेदा च्च ।

---

(४३) वरुनहि ककुत् और सो कहई, दूनो ध्रुव बीचे वह रहई ।
जतो "वरुन पच्छिम दिग नाथा" ब्रह्म यामलक गावै गाथा ॥
(४४) महर्लोक है ग्रीवा ताकी, स्वर्ग लोकसे ऊपर थाकी ।
"ग्रीवा महर्लोक" विख्याता, कहै भागवत यह सब बाता ॥
(४५) तहाँ अनाहत नाद, तालु ओठ पुट कर्म तजि ।
दुय विध नाद प्रवाद, आहत और अनाहतहु ॥
'तहाँ अनाहत ईश्वर नादा, आहत नाद जीवकर वादा"
भाषत ताहि साम उपवेदा, समुझ लिये पर रहै न खेदा ॥

जनलोको वदनम् ॥ ४६ ॥

महर्लोकोदूर्ध्वत्वसान्निध्यसाम्यात्, "वदनं वैजनस्ये"त्यादि श्रीभागवताच्च ।

काम श्चिबुकम् ॥ ४७ ॥

पुरुषकामव्यञ्जकश्मश्रुभूमित्वात्, "जाभुके श्मश्रुता चिह्नं शएढे ह्यश्मश्रुता तथे-"त्यादि कामशास्त्राच्च ।

लोभोऽधरः ॥ ४८ ॥

काममूलत्वा ल्लोभस्य चिबुकमूलत्वा दधरस्य, "अधर एव लोभ" इति श्रीभागवता च्च ॥

लज्जो त्तरोष्ठः ॥ ४९ ॥

लोभस्नेहाद्याच्छादकत्वसाम्यात्, "व्रीडोत्तरोष्ठ" इति श्रीभागवता च्च ।

---

(४६) जन लोकहि जानहु वदन, महर लोक उपराय ।
कहे भागवत मध्य तहँ, "जन लोकहि मुख" गाय ॥
(४७) ताके चिबुक समान, कामदेव नहिं आन कछु ।
दाढी मोछ निसान, पुरुष काम व्यंजक उगे ।
ताहि नपुंसक जान, जहाँ न दाढी मोछ है ।
काम शास्त्र परमान, होत पुरुष में श्मश्रुता ॥
(४८) लोभ अधर कहि मान, काममूल वह होत है ।
लोभै चिबुक निदान, "लोभ अधर" व्यासहु कहत ॥
(४९) लज्जा ऊपर ओठ, लोभ नेह कह छोपि रह ।
"व्रीडा उत्तर ओठ" ऐसै भागवतो कहै ॥

पुत्रादिस्नेहा दन्ताः ॥५०॥

जर्जरीकरणसाम्यात्, "स्नेहकला द्विजानी-" ति श्रीभागवताच्च ।

यमो दंष्ट्राः ॥५१॥

सञ्चूर्णनीकरणत्वसाम्यात्, "दंष्ट्रा यम-" इति श्रीभागवताच्च ।

आप स्तालु ॥५२॥

"स्रवन्ती नाडिका तालु,-सङ्गता वारुणी सदा । रसस्य जलमूलत्वा, द्रसना तेन हेतुने-" ति योग-भाष्यात् ।

अग्नि र्जिव्हा ॥५३॥

सर्वरसभुक्त्ववर्णाकारादि-साम्यात्, "हव्यकव्या-मृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च।" इति श्रीभागवताच्च।

(५० पुत्र आदिकै नेह है, तिन विराटको दन्त ।
दूनों जजर करत हैं, कहेउ व्यास भगवन्त ॥
(५१)यमदंष्ट्रा चौथड कह जानो, चूरन करन साम्य तहँ मानो ।
"दंष्ट्रा जम" भागवत बतावै, (५२)पानी तालु थान अपनावे ।
"झरै नाडिका वारुनी, तालु संगता होय ।
जल मूलक रस होत हैं, रसना कारन सोय ॥
जोग भाष्यसे देत प्रमाना ।(५३) अग्नि देवता जिह्वा माना ।
रंग रूप सम सब रस भोगी, "हव्य कव्य अमृतहु संजोगी ।

रसतन्मात्रं रसनेन्द्रियम् ॥५४॥

प्रमादिजीवशरीरादीना मास्वादकत्वात्, सर्वरस-मूलत्वात्, "आपोऽस्य तालू रस एव जिह्वे-" त्यादि श्रीभागवताच्चेति ।

सरस्वती वागिन्द्रियम् ॥५५॥

जगद्वचोधिष्ठातृदेवतात्वसाम्यात्, "जिह्वा देवी सरस्वती–" तिहरिवंशात्, "वागीशा यस्य वदने–" इति प्रह्लादपञ्चरात्राच्च ।

लौकिकालौकिकसत्यवचनानि शब्दः, "एष तु वा अति वदति यः सत्येना तिवदती" तिश्रुतेः। "अस्य महतो

जिह्वा सब रस चाखन हारी" जथा अग्निकह्यो व्यास विचारी ।
(५४) रसनेन्द्रिय है रसतन्मात्रा, चखै प्रमादि जीव सम गात्रा ।
"आपोऽस्यतालूरस एव जिह्वा–" भाष्यो महाभागवतादि प्रह्वा।

(जिह्वा के दुय काम हैं, रस चीखब अरु बोल ।
रसना गुन वरनन किये, बोली चोखी खोल ॥)
(५५) वचनेन्द्रिय है सुरसती, बानी जगकी सोय ।
"जिह्वा देवी सरसुती, कह हरिबंशहु जोय ॥

"वागीश्वरी वदन है" जासु, प्रह्लादपंचरात्र प्रकासु ।
लौकिक सत्य अलौकिक बानी, शब्दहिके गुन जाती जानी ।
कहै वेद–"यह जो कछु बोलै, सत्य भरोसे बचनहिं खोलै" ।

भूतस्य निःश्वसित मेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो थर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराण-" मित्यादि श्रुतेः । निःश्वसितं तत्पूर्वकः शब्द एव ।

माया हास्यम् ॥५६॥

प्रभूणा मन्यथा वाग्व्यवहारादिसंवलितोपहासेनानभिज्ञानां चित्तविक्षेपकत्वसाम्यात्, "हास्यं जनोन्मादकरी च माया-" इति श्रीभागवता च्च ।

जृम्भादयो भूता जृम्भाः ॥५७॥

विकृतचेष्टाकर्तृत्वसाम्यात्, "जृम्भादयो विजृम्भा स्यु-" रिति वायुपुराणा च्च ।

अगस्तियमौ दक्षिणवामगल्लौ ॥५८॥

अगस्तेः समुद्रपायित्व-वातापिभक्षकत्वसाम्यात्, यम-

"महा पुरुष कै यह निःश्वासा, वेद चार पुरान इतिहासा ।
तहँ निश्वास अर्थ यह होई, साँस समेत शब्द है सोई ॥
(५६) माया हँसी विराट प्रभुकेरी, जिमि प्रभुजन उपहास घनेरी।
करै चित्त विच्छेपहि तैसे, अनजानतकर होवहि जैसे ।
"जन उन्मादकरी वह माया, हँसी" ताहि भागवत बताया ।
(५७) जृंभादिक जे भूतगन, वेहो जृंभा होत ।
चेष्टा विकृत बनाइ कै, मुँह बावत मन गोत ॥
"जृंभादिक ही होत हैं, तहाँ विजृंभन वान" ।
वामें देत प्रमान यह, वायू महा पुरान ॥
(५८) मुनि अगस्त जमराजहु दोऊ, दाहिन बाम गालसम होऊ ।

स्या पि जगद्भक्षकत्वात्, "कालो जगद्भक्षक–" इत्यादि पद्मपुराणीयवाक्या च्च ।

पश्चिमार्द्धभागसहिते दक्षिणोत्तरदिशौ कर्णौ

कर्णाभ्या मकाशावच्छेदकत्वसाम्यात्, "कर्णौ दिशः श्रोत्र ममुष्य शब्द-" इति श्रीभागवता च्च ।

शब्द-तन्मात्रं श्रवणेन्द्रियम् ॥६०॥

"श्रोत्र ममुष्य शब्द-" इत्यादि श्रीभागवतात् (तोक्तत्वात्) ।

नासत्यौ नासे ॥६१॥

सौन्दर्य्य साम्यात्, प्राणायाम-स्वराभ्यास-शङ्खो·

वातापी भच्छक मुनिराया, पीयत सागर उनहि सुखाया ॥
हैं यमराज सकल जगभच्छी, उनते को जग जीव सुरच्छी ।
"जग भच्छक है एकहि काला" पदुम पुराने वाक्य निराला ॥
(५९) पच्छिम आधे भाग मिलाना, दक्खिन उत्तर दिस दुहु काना
कारन तहाँ बतावत काना, दूनौ होत अकास समाना ।
"कानै दिसा श्रोत्र आकासा" महाभागवत शब्द प्रकासा ॥

(६०) होत शब्द तन्मात्रही, श्रवणेन्द्रिय प्रभुकेर ।
कह्यो भागवत पूर्वही, श्रोत्र शब्द है" फेर ॥

(६१) हैं नासा अश्विनी कुमारा, दूनो मँह सुन्दरता भारा ।
प्रानायामहि स्वर अभ्यासे, संखोदकते रोग बिनासे ॥

दकाभ्यासै रोगनाशस्य दर्शनात् "नासत्यदस्रौ परमस्य नासे-" इति श्रीभागवता च्च ।

गन्ध-तन्मात्रं घ्राणेन्द्रियम् ॥६२॥

यावद्गन्धमूलत्वात्, "घ्राणोऽस्य गन्ध—"इति श्रीभागवता च्च ।

वायु र्निःश्वसितम् ॥६३॥

सर्वेषां जीवनस्य तद्धेतुत्वात्, "सर्वासूनाञ्च वायोश्च तन्नासे परमायने"—इति श्रीभागवता च्च ।

जनतपसो र्मध्ये य दन्तरिक्षं तदेव भागद्वयेन दक्षिणवामाक्षिणी ॥ ६४॥

"अन्तरिक्ष मक्षिणी—" इति श्रुतेः ।

नासत्यौ नासा कहत, श्रीभागवत पुरान ।
(६२) तहाँ गंध तन्मात्रको, भाषत इंद्रिय घ्रान ॥
जावहि गंध कहे मुनि व्यासा, सकल गंधकै वह जडस्वासा
(६३) है विराट कर वायू साँसा, सबके जीवनकर वह आसा ।
"वायु कढ़े सब प्रान गवावैं, परमायन" भागवत बतावैं ॥
(६४) जन औ तपके मध्यमें, रहत जौन आकास ।
दहिनी बाँयी आँखि सो, करि दुष भाग प्रकास ॥

आदिसूर्य श्चक्षुः ॥ ६५ ॥

वैकारिकसृष्टा वादिसूर्यस्य सम्भवात्, "चक्षु- र्विश्वरूप-इत्यादि श्रुते श्च ।

ब्रह्मणो राज्यहनी निमेषोन्मेषौ ॥ ६६ ॥

जगतोऽदर्शनदर्शनत्वसाम्यात्, "चित्तोन्मेषनिमे- षाभ्यां, संसारप्रलयोदयौ-" इत्यादि वशिष्ठा च्च ।

दुरन्तसृष्टिः कटाक्षः ॥ ६७ ॥

दिनस्यो न्मेषत्वा दस्मि न्नेव सृष्टिनियमा दुन्मे- षाव्यवहितोत्तरक्षणे ईषद्दृष्टिपातात्, "दुरन्त सृष्टि र्यद पाङ्गमोक्ष-"इति भागवता च्च ।

---

(६५) कहैं वेद भगवान, आदि सूर्यही चक्षु हैं ।
जब विकार सिरजान, पहिले भये दिवाकरहि ॥
चक्षको विश्वरूप श्रुति कहई, (प्रभुकै आँखि सूर्य है रहई ।)
(६६) ब्रह्माकै जो दिन अरु राती, है उन्मेष निमेष खचाती।
जगकै दरस अदर्सन होई, ताते समता पावत सोई ॥
चित्तोन्मेष निमेषते, जगकै सृष्टि विनास ।
कहे योग वासिष्ठ से (रामानन्द निकास)॥
(६७) होवैं दुरंत सृष्टि कटाछा, दिनमें सृष्टि नियमकै काछा ।
खुलत दृष्टि उत्तर छनमांही, जब कछु झँपै ताहि बतलाही ॥
"दुरन्त सृष्टि र्यदपाङ्गमोक्षः" श्रीमन्महाभागवत प्रमाणम् ।

मित्रत्वष्टारौ भ्रुवौ ॥ ६८ ॥

मेहति सेचतीति मित्रः, त्वक्ष्णोति तनूकरोतीति त्वष्टा, इति योगलक्षणया तयोः क्रमेण स्नेहक्रोधाधिष्ठातृदेवतात्वात्, तयोश्चभ्रूभ्या मुपलभ्यमानत्वात्, तद्भ्रूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्य–" मिति श्रीभागवताच्च ।

तपो ललाटम् ॥ ६९ ॥

जनलोकोपरि-सन्निहितत्वात्, तेजस्वित्वसाम्यात्, "तपो रराटीं विदु रादिपुंसः–इति श्रीभागवताच्च ।

सत्यलोकः शिरः ॥ ७० ॥

तपो लोकोपरिसन्निहितत्वात्, "सहस्रशीर्षा पुरुष–"इत्यादि श्रुतेः । "सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः"-इत्यादि श्रीभागवताच्च बहुत्व मानन्त्याभिप्रायेण, "मू-

---

(६८) मित्र त्वष्टा भ्रुव हैं दोऊ मह्के सेचन अर्थ न गोऊ ॥
ताते मित्र एक पहिचानो, छोट (तनु) करैसे त्वष्टा जानो ॥
जोग लच्छना ते ये दोऊ, स्नेह क्रोध के स्वामी होऊ ।
दूनों भ्रुगत प्रकट दिखाते, तहं प्रमान भागवत बताते ॥
(६९) है बिराट ललाट तप लोका, जाके निकट तरे जन लोका ।
अतिसय तेज तहाँ परकासै, "तपहि रराटि" भाषत व्यासै ।
(७०) सत्यलोक सिर तासु तप के ऊपर संनिहित ।
कहै वेदहु जासु, "हैं हजार सिर वे पुरुष" ॥

र्द्धैव सुतेजा"—इत्यादौ सामवेदे एकत्वस्यैवाभिधानात्, सुतेजाः शोभनतेजस्वी सत्यलोक एव ।

मेघाः केशाः ॥ ७१ ॥

महाप्रलयकर्तृणां मेघानां सर्वोपरिवर्त्तमानत्वसाम्यात् । श्यामत्वाधोलम्बित्वसाम्यात्, "ईशस्य केशान् विदु रम्बु वाहा-"नित्यादि श्रीभागवता च ।

उपनिषदो ब्रह्मरन्ध्रम् ॥ ७२ ॥

अनाहतस्य सुषुम्णायाश्च ब्रह्मरन्ध्रपर्य्यन्तसञ्चारादुपनिषदाञ्च ब्रह्मप्राप्तिद्वारत्वात्, "शतञ्च एका च हृदयस्य नाड्य स्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका तयोर्द्ध्वमाय

"सीस सहस्र शीर्ष कै सत्यै, „ अभिप्राय तहं यह सब मत्यै ।
जो बहुत्व आनंत्य दिखावा, मूर्धा सत्य सुतेजा गावा ॥
सामवेद जो एक बतायो, सत्यलोक तेजस्वी गायो ।
(७१) मेघवृंद हैं केस सब, करते प्रलय कठोर ।
सबके ऊपर रहत हैं, काले लटकन छोर ॥
कहत ईश के केश हैं, अम्बुवाह घनघोर ।
जिहि लखि नाचत व्यास कै, नीलकंठ मन मोर ॥
(७२)ब्रह्मरंध्र उपनिषद बखानी, तहँ लगि जात अनाहत बानी ।
होत सुषुम्ना कर संचारा, वाही ब्रह्म प्राप्ति कै द्वारा ॥
हृदय बसंत एकसै एका, नाडी तहँ इक ऊपर फेंका ।

ऽमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ती-"ति श्रुतेः। "छन्दांस्य नन्तस्य शिरो गृणन्ती-"ति श्रीभागवताच्च छन्दांसि वेदभागरूपा उपनिषदः शिरो ब्रह्मरन्ध्रम्।

ओषधयो महीरुहा स्तनूरुहाः ॥७३॥

सर्वलोकेषु वर्त्तमानत्वसाम्यात्, "नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र"-इत्यादि श्री भागवताच्च।

लक्ष्मीः शरीरशोभा ॥७४॥

शोभाधिष्ठातृदेवतात्वात्, "यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम। नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः

ताते गये अमृत पद पावै, इत उत दूसरि लै डुलकावै" ॥
कहै वेद यह अद्भुत बाता, यामे संशय किये न भाता ॥
छन्दै शिर अनंतकै भाखै, वेदव्यास मुनीश सुराखे ॥
वेद भाग उपनिषद बखाने, ब्रह्मरंध्र ताते वे माने ॥
(७३) ओषधि सब महिरुह समुदाया, होहिं तनूरुह लोम बताया।
कारन सकल लोक में होते, तैसहि लोम देह भर पोते ॥
नदी नाडियाँ होति हैं, महिरुह तनुरुह (वृक्ष लोम सम) तासु।
विश्वरूप भगवंत कै, कहत भागवत व्यास ॥
(७४) हैं लच्छमी देह की सोभा, जाहि विलोकि सबै मन लोभा
वही स्वामिनी शोभा केरी, विष्णु पुरान बचन सुनु फेरी ॥
जथा सर्वगत विष्णु हैं, तैसहि ताहू जान।
जग जननी वह नित्य ही, रमा राम (विष्णु) सम मान ॥

श्री रनपायिनी-"तिविष्णुपुराणात् । "देवत्वे देवदेहे यं मनुष्यत्वे च मानुषी । विष्णो रूपानुरूपाञ्च करोति ह्यात्मनस्तनुम्" इत्यागमा च्च ।

भूताकाशो देहरन्ध्राणि ॥ ७५ ॥

भूतानां छिद्रदातृत्वं, बहिरन्तरमेव च ।

"प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं, नभसो वृत्तिलक्षण"-मिति श्रीभागवताच्च ।

चिदाकाश आत्मा ॥ ७६ ॥

सच्चिदानन्दरूपत्वात्, "आकाशशरीरं ब्रह्मे"-त्यादि "सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्या काशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशेन जातानि जीवन्ति आकाशं प्रत्यस्तं यान्ती"-ति श्रुतेः ।

देव रूप में देवता, मनुज भये मनुजात ।
विष्णु रूप अनुरूप तन, करती आपनि मात ॥
अस कहि आगम भेद बतावै, ताते श्री शोभा पद पावै ।
(७५)देह रंध्र सब भूत अकासा, "करैं छिद्र लखि भूत निवासा ॥
भूत छिद्र करि देत हैं, भीतर बाहर होय ।
प्राणेंद्रियात्मधैष्ण्यत्वं, नभोवृत्ति है सोय" ॥
(७६)कहत आतमा चिद आकासा, सत चित आनँदरूपप्रकासा ।
ब्रह्म अकास सरीर बुझावै, (एक ब्रह्म खं ब्रह्म कहावैं) ।
"सबै भूत अकास उपजाये, करि उतपन्न अकास जिआये ॥
पुनि अकासमें सबहि समावैं," ये सब बचन वेदही गावैं ।

मनुजो निवासः ॥ ७७ ॥

मनुष्येषू पलभ्यमानत्वात् "मनुष्यत्वे चाविस्तरा मात्मे-"ति श्रुतेः। मनुर्मनीषा मनुजो निवासः गृहं शरीरं मानुष्य-"मित्यादि स्मृतेश्च।

जीवभोगो भोगः ॥ ७८ ॥

सर्वान्तर्यामित्वात्, भोगस्य चैतन्यपर्यवसानात्, अहं वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां देह माश्रितः। प्राणापानसमायुक्तः, पचाम्यन्नं चतुर्विधं"-मिति श्रीभगवद्गीतायाश्च। वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात्।

(क) इत्येतस्मिन्नधिकरणे "तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्द्धैव सुतेजाश्चक्षु विंश्वरूपः

---

(७७)मानुष तासु निवास, मनुजनमें मिलिजात वह।
वेदै भेद प्रकास, है मनुष्यता आतमा" ॥
"मनू मनीषा मनुजै वासा, गृह शरीर मनुज" स्मृतिभासा।
(७८)जीव भोग भोग है ताको, अन्तर्यामि भोग चित जाको ॥
वैश्वानर रूप धरे हमहीं, सब प्रानिनके तन मांह रहैय्या,
प्रान अपान समान किये, हम भीतर चौविध अन्न पचैय्या।
श्रीमुखसे भगवंत कह्यो, तब और प्रमान भले बतवैय्या,
वैश्वानर शब्द सधारन ते, कछु बात विशेष इहां समुझैय्या ॥
(क) यही विषय में वेद की, ऋचा विचारी जात।
"वहै आतमा आपही, वैश्वानरहि लखात ॥

प्राणः पृथग्वर्त्मा सन्देहो बहुलो वस्ति रेव रयिः पृथिव्ये व पादा—" वित्यादि श्रुते विंचारे-अत्रहि परमेश्वर एव द्युमूर्द्धत्वादिविशिष्टोऽवस्थान्तरङ्गतः प्रत्यगात्मत्वेनो पन्यस्त आध्यानाये ति गम्यते, कारणत्वात्। कारणस्य हि सर्वाभिः कार्यावस्थाभि रवस्थावत्त्वात्,— इत्यादि शारीरकभाष्यात्।

(ख) तत्रापीदं मायिकं माया वा ब्रह्मवेति विचार्य्यते, तत्रा पवाद्य माद्यं, न ध्यानार्हं, "आध्यानाये" ति—वाचस्पति-कल्पतरु-परिमलादौ निश्चितत्वात्। अतो

ताकै मूर्धा तेजमय, विश्वरूप हो चक्ष।
प्रान पृथक वर्त्मा कहे, सकल देह अँतरिक्ष॥
अधो भाग जो नाभि कै, रयी वही है तासु।
भूमीही पद युगल है." श्रुति विचार यह भासु॥
याते वह परमेश्वरै, गगन (अगिन) शीर्षता युक्त।
स्वयं अवस्था अन्य लहि, अन्तरातमा उक्त॥
कारन तहँ नहि अन्य कछु, ध्यानगम्य बनि जात
सबै अवस्था कार्यकी, कारन को प्रकटात॥
यह शारीरिक भाष्य मत, कहेउ भले समुझाय।
(याते ईश्वर निर्गुनै, सगुन रूप दरसाय॥)
(ख) मायिक माया ब्रह्म है, यह विचार पुनि कीन्ह।
तहाँ प्रथम अपवाद्य है, भावत ध्यान न लीन्ह॥
कबहूँ मायिक है नहीं, नहीं ध्यान में चीन्ह।
वाचस्पति अरु कल्पतरु, परिमलहू कहि दीन्ह॥

ह्य नादिमायेश्वरेच्छैवेश्वरमूर्त्तिः, आकाश एव "तदोतं च प्रोतं" चेत्यादि श्रुतेः । आकाशोऽत्राव्याकृतं–"अजाऽपि सन्नव्ययात्मा, भूतानामीश्वरोऽपि सन् । प्रकृतिं स्वा मधिष्ठाय, सम्भवाम्या त्ममायये–" त्यादि श्रीभगवद्वाक्या च्च ।

(ग) उक्तञ्च भाष्यकारेण–स च भगवान् स्वां वैष्णवीं मायां प्रकृतिं वशीकृत्या जोऽव्ययो भूताना मीश्वरो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभावोऽपि सन् स्वमायया देहवा निव जात इव च लोकानुग्रहं कुर्वंल्लक्ष्यते स्वप्रयोजना भावेऽपि भूतानुजिघृक्षये ति । आनन्द

तब अनादि मायेश्वरहि, इच्छा ईश्वर मूर्ति ।
"ओत प्रोत" आकाश है, श्रुति के वचनै स्फूर्ति ॥

"यद्यपि जन्म होत नहिं मोरा, अव्यय आतम अहहूँ ।
सब भूतन कै ईश्वर है कै, जबही इच्छा करहूँ ।
तहि कै अपनी प्रकृती को तब, आतम माया द्वारा ।
धरौं रूप जनमें सब जानै" यह भगवन्त उचारा ॥

(ग) तहाँ भाष्यकार अस भाषैं, जब भगवान स्वप्रकृति सुराखैं ।
बस करि वैष्णव माया तबहीं, अज अव्यय भूतेश्वर सबहीं ॥
नित्य शुद्ध बुद्ध वह देवा, मुक्त स्वभाव रहहिं नहिं भेवा ।
पर निज माया वश वह होई, धरत देह जनमत जस कोई ॥
सकल लोक पर दया दिखावत, नाहि प्रयोजन आपन भावत ।
केवल भूत अनुग्रह लागी, कह आनंद ज्ञान वैरागी ॥

गिरिणा च स्वेच्छाविनिर्मितेन मायामयेन दिव्येन रूपेण सम्बभूवेति, न ह्येतावता द्वैतापत्तिः, निस्तरङ्ग-सतरङ्गजलस्य भेदादर्शनात् ।

निस्तरङ्गावस्थायां शक्तिप्रतियोगिकभेदाभावात्, सतरङ्गावस्थाया मपि तरङ्गादिप्रतियोगिकभेदाभावा च्च । अतएव

(घ) नित्यो यः कारणोपाधि र्मायाख्योऽनेकशक्तिमान् । स एव भगवद्देह, इति भाष्यकृतां मतम् ।" अन्ये तु महेश्वरे देह-देहिभावं न मन्यन्ते, किन्तु य एव नित्यो विभुः सच्चिदानन्दघनो भगवान्सएव तद्विग्रहो नान्यो मायामायिको वा । "अविनाशी" वा अय

निज इच्छा निर्मित तनू, मायामय भगवन्त ।
दिव्य रूप धरि जब भये, तब नहिं द्वैत वदन्त ॥
निस्तरंग सतरंग जल एक होत नहिं भेद ।
तहाँ शक्ति प्रति योग वश, भेद भाव तजि खेद ॥

(घ) नित्य शुद्ध बुद्ध निरुपाधी, कारन बस सो लहत उपाधी ।
सर्व शक्तिमान है जोई, भगवत देह होत है सोई ॥
भाष्यकार सब यही बखानै, अन्य अचारज यह नहिं मानैं ।
महामहिम्न महेश्वर माँही, देह देहि भावहु है नाँहीं ॥
किन्तु जौन विभु नित्य अनंता, सत चित आनँद घन भगवंता ।
तौनै ताकर विग्रह होई, माया मायिक अन्य न कोई ॥

मात्मानुच्छित्तिधर्मे—" त्यादि। "आकाशशरीरं ब्रह्मे-" त्यादि श्रुतेः।

(ङ) "स भगवः कस्मि न्प्रतिष्ठितः स्वे महिम्नी-" त्यादि श्रुतेः। "यस्य विश्वात्मकत्वेऽपि, खण्ड्यते नै कपिण्डते" त्यादि। "सर्वशक्ते रनन्तस्य, विलासो हि मनो जगत्। तरङ्गाग्रगणै रम्भः, सिन्धोः स्फुरति नो रजः" — इत्यादिवशिष्ठाच्च।

"ब्रह्म तं परादा द्यो ऽन्यत्रा त्मनो ब्रह्म वेद,
क्षत्रं तं परादा द्यो ऽन्यत्रा त्मनः क्षत्रं वेद,
लोका स्तं परादु र्यो ऽन्यत्रा त्मनो लोका न्वेद,
देवा स्तं परादु र्यो ऽन्यत्रा त्मनो देवा न्वेद,

"अविनाशी यह आतमा, उच्छिति धर्म विहीन"।
'ब्रह्म अकास शरीर है', यह सब श्रुति कहि दीन॥

ङ) 'कहाँ प्रतिष्ठित हैं भगवंता, निज महिमामें' कह श्रुति संता

जाके विश्वात्मक भये, एक पिंडता तासु।
कबहूँ खंडित होति नहिं, यह विचित्रता जासु॥
सर्बस शक्ति अनंत कै, मन है जगत विलास।
उठत समुद्र तरंग ते, जल नहिं रज परिभास॥
यह बशिष्ठ कै बचन है, (भली भाँति मन देहु)।
(सकल विचार निचोरिकै, वेद वाक्य सुनि लेहु)॥

ब्रह्म ताहि तें दूर पराना, आतम भिन्न ब्रह्म जो जाना।
क्षत्र ताहि ते दूर पराना, आतम भिन्न क्षत्र जो जाना॥
लोक ताहिते दूर पराने, आतम भिन्न लोक जो जाने।
देव ताहिते दूर पराने, आतम भिन्न देव जो जाने॥

भूतानि तं परादु र्यो ऽन्यत्रा त्मनो भूतानि वेद,
सर्वं तं परादा द्यो ऽन्यत्रा त्मनः सर्वं वेदे—''त्यादि,
व्यतिरेकभावननिन्दाव द्यजुर्वेदेनापि ।
"एत दात्म्य मिदं सर्वं तत्सत्य—" मित्यादिना
च । अनिर्देश्यवपुष स्तीर्थकोटिसमाह्वयस्या नुसन्धान
मेवोक्त मिति ।

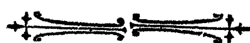
इतिश्रीनित्यातिशयषडैश्वर्य्यसम्पन्नश्रीसाहिबिलंद इकबालमहम्मद्दाराशकोहसर्बप्राणिपुञ्जप्रकर्षप्रोद्भूतसत्सन्तानाखण्डमण्डलधरणिधरनियुक्तश्रीमद्रामानन्दसूरिणा विरचितं विराड्विवरणं सम्पूर्णम् । संवत् १७१२ वैशाखे मासि शुक्लपक्षेत्रयोदश्यां शनौ ॥ शुभम् ॥

भूत ताहि ते दूर पराने, आतम भिन्न भूत जो जाने ।
सबहि ताहि ते दूर पराना, आतम भिन्न सर्व जो जाना ॥
यह व्यतिरेक भावना होई, निंदा सम भाषत श्रुति गोई ।
यजुर्वेदहू से संमत्यं, एतदात्म्य यह है सब सत्यं ॥

अनिर्देश्य वपु ब्रह्म कै, कोटि तीर्थ सम नाम ।
तिहिकर अनुसंधान कहि, लहत जीव विश्राम ॥

विद्वद्वृन्दधुरीणधीरसरयूपारीणवंशोद्भवो,
"रामानन्द" सुधी "विराड्विवरणं" य न्निर्ममौ सुन्दरम् ।
तद्भक्तया न्वयजेन तस्य च मया भाषानुवादः कृतः
तस्मा एव समर्प्यते स्वगुरवे प्रीणातु मत्पूर्वजः ॥१॥
"रामानन्द" कुलोत्पन्न—"नारायणपतेः" कृतः ।
भाषानुवादः सम्पूर्णः, षडष्टाङ्केन्दुवैक्रमे (१९८६) शम्

श्रीश्यामास्तवराजः।



धातारं कालि ! तालीसुरपतिशशिभि र्भूषितं बीज मेत
द्ये त्वा मिन्दीवराभा म्भगवति ! हृदये भावयन्तो भजन्ति।
तेषां सद्यो मुखाग्रा त्प्रसरति कविता गद्यपद्यानवद्या,
वाग्देवी वक्त्रपद्मे निवसति कृतिना मिन्दिरा मन्दिरेषु॥१॥
वाराहं वह्निवामश्रुतिशशिललितं तद्वयं गुह्यगुह्यं,
बीजद्वन्द्व न्तदेत त्तव जननि! घनश्यामले! ये जपन्ति।
तेषां विद्वेषिवर्ग्गः प्रभजति निधनं घोरनादे विवादे,
जित्वा ते वादिवृन्दं स पदि जग दिदं स्वस्य वश्यं नयन्ति२
ताली गोविन्दचन्द्रान्वित मतिललितं कामगं बीज मेतत्,
त्रिःकृत्वा घोरदंष्ट्रे! जननि! घननिभे कालिके ! ये जपन्ति।
तेषां गङ्गातरङ्गावलि रिव तरसा देवि ! चन्द्रार्द्धचूडे !

मेलि ककार रेफ ईकारै, चन्द्रबिन्दु दै बीज सुधारै।
नील कमल सम मूरति तोरी, काली मन धरि जपै बहोरी॥
कविता गद्य पद्य रस घोरी, ताके मुखते कढ़ै अथोरी।
करै सारदा मुखमें बासू, तजहि न लछिमी तिहिकर पासू॥१॥
मिलत हकार रेफ पै ईके जबहीं बिन्दु लगावै,
यह तुव बीज गुह्य अति होई दुय दुय करि जपि जावै।
ताके सत्रु निधन ह्वै जावैं वादी तुरतहि हारैं,
मातु कालिके ! वे सब साधक यह जग बसकरि डारैं॥२॥
जहाँ ककारमें लगै लकारू, ई पै बिन्दु धरैते,
विकट दंतवाली श्रीकाली ! त्रिगुनित बीज जपैते।
ताके मुखते गंग लहर सम, निकसै बानी धारा,

सद्यो वैदग्ध्यमुग्धा निजमुखकमला च्चाटु निर्यान्ति वाचः ३
वह्निस्थं यादवेशं शशधरकलया वामनेत्रेण जुष्टं,
पश्चादव्वींशसोमान्वित मतिललितं वामपादं विभाव्य।
ईशं गोविन्दचन्द्रानलकलित मथो योजयित्वा स्वमन्ते,
मात ! मन्त्रं तवै तत्त्रिभुवन जनतावश्य कृत्साधकानाम् ४
वर्गादि वह्निशान्तीन्दुभि रतिललितं त्रिःकृतं लोलजिह्वे !
पश्चात्फटकार मुग्रे तदनु हरवधु ! प्रोद्धरे दग्निजायाम् ।
एतन्मन्त्रस्य जापा ज्जननि ! जडधिया मप्यनेके मुखाग्रा
दाविर्भावं भजन्ते नवरसरुचिरा गद्यपद्यप्रवाहाः ॥ ५ ॥
वामे पाणौ कृपाणं विकटनरलसच्छिन्नमुण्डं दधाना,
मूर्ध्वाधोदक्षपाणा वभयवरवती मम्बुदश्यामलाङ्गीम् ।

चन्द्रकला धारिनि ! जगदम्बे, ! अति वैदग्ध विहारा ॥३॥
बीज तीनहू एक ठौर करि पुनि फटकार लगावै
तब तुव मंत्र बनै वह माई ! जो बड़ सिद्ध कहावै ।
ताहि जपै जो साधक चित दै, संभुविलासिनि देवी !
सो त्रिभुवन को वस करि राखै, सत्य तोर पद सेवी ॥४॥
जबै ककार में रेफ लगाई, ई पै बिन्दू देवै,
तब तुव मंत्र त्रिगुनकरि पाछे, फट अरु स्वाहा सेवै ।
चंचल जिह्वे ! जपै मंत्र यह जो जड बुद्धी कोई,
ताके मुख ते नव रस धारा गद्य पद्य उपजोई ॥ ५ ॥
ऊपर बायें हाथ में, लसत कृपान विसाल ।
ताके नीचे विकट नर, छिन्न (कटा) मुंड विकराल ॥
दाहिन दूनों करन में, अभय तथा वर सोह ।
अंबुद श्यामल अंग सब, रहति दिगम्बर वोह ॥

दिग्वस्त्रां घोरदंष्ट्रोत्कटरुचिरगलद्रक्तधाराकरालां, वन्दे
कालीं सकालां स्मितमुदितमुखीं बिभ्रतीं मुण्डमालाम्
कालव्यालोपवीतां शवकरनिकराबद्धकाञ्चीं शवास्थि,
भ्राजत्केयूरशङ्खोत्कटवलयलसद्बाहुदण्डां प्रचण्डाम् ।
मांसग्रासोत्सुकास्यां कुणपमपि ललज्जिह्वया लेलिहानां,
वन्दे घोरैः किशोरैः श्रुतियुगविलसच्चारुकर्णावतंसाम् ॥७॥
फेंकारै र्भीषणाभि र्दिशि दिशि परितः फेरवीभिः परीतां,
माभै र्माभै रितीदृग्वचन मविरतं साधकेभ्यो वदन्तीम् ।
त्रैलोक्यं त्रासयन्तीं कहकहकहकहै श्चण्डहासै र्हसन्तीं दुष्टा
न्सन्तर्ज्जयन्तीं विगलितकवरीं कालिकां भावयामि॥८॥
सर्वालङ्कारयुक्तां नवजलदनिभां पीनवक्षोनितम्बां,
राजत्सिन्दूरपूरां पटुविकटजटां प्रोलसच्चन्द्रचूडाम् ।

घोर द्रंष्ट्र उत्कट रुधिर, बहत रक्त की धार ।
बन्दौं काली स्मित मुखी, पहिने मुंडन हार ॥ ६ ॥
काल व्याल उपवीत दधाना, रशना शवकर निकर विधाना ।
मुरदा हाड विजायठ कीन्हें,उत्कट शंख कटक भुज दीन्हें ॥
मांस चबाति कुणपको चाटै, घोर किसोर करन जुग साटै ।
लपलपाति रह जिह्वा नीकी, प्रनवौं पद रज कालीजी की ॥७॥
अति भयंकर फेंकरत स्यारिन जाके चहुँदिसि घेरैं,
"मतडर मतडर" ऐसी बानी, साधक जनते टेरैं ।
सब त्रैलोक्य त्रास उपजावति कहकहाय के हँसती,
बन्दौं काली जूरा खोले दुष्टन को धरि घँसती ॥ ८ ॥
पहिने सब भूषन नीरदसी अति पीन नितंब तथा छतिया,

तल्पस्थां वैपरीत्यं शवहृदि सुरते देवदेवेन सार्द्धं,
सानन्दं भावयन्तीं शवभवनगतां भद्रकालीं भजामि ॥९॥
शवानां दोर्वल्लीकृतरुचिरकाञ्चीं श्रुतिलस-
च्छवद्वन्द्वां देवीं शवहृदि निषण्णां स्मितमुखीम् ।
महाकालेनापि प्रचुरसुरतानन्दनिरतां,
महाकालीं ध्याय न्नपि भवति मूको ऽपि सुकविः॥१०॥
रजःकीर्णं नार्य्या जपति मदनागार ममलं,
चिरं स्मारं स्मारं यदि जननि ! भक्त स्तव मनुम् ।
स जित्वा वादीन्द्रा ननुपमकवित्वामृतधुनी,
धुरीणः सानन्द स्तव चरणलीनः प्रभवति ॥ ११ ॥
निशाया मीशानि !प्रजपति चितायां यदि जनः,
श्मशाने वा वीभी भगवति ! शवारोहणपरः ।

सिर सेंधुर सोहत चन्दकला विकटा पटु सोह जटा लटिया ।
विपरीत रती करती सिव संग बनाय शवै अपनी खटिया
शव भौन निवासिनि कालिकाको भजिहौंसबसाधतिजोबतिया९
शवके कर काटि करी रशना शव जुग्म लसैं कनकुण्डल माँही,
शवके हृदया पर बैठि निसंक ठठायके हाँसति हैं शव जाँही ।
सँगलै महाकालहि सङ्ग करै अतिसै सुरतानँद मग्न बनाँही,
धरि ध्यान बनैं सुकवी जन मूकहु कालिकाके कछु संसय नाँही१०
रज परिपूरन सुमिरिकै, नारी मदन-अगार ।
जपै भक्त चिरकाल लौं, जौ यह मंत्र तुम्हार ॥
तौ वादीन्द्रहि जीति कै, कविता धुनी प्रवीन ।
होत परम आनंद जुत, तुव पद पंकज लीन ॥ ११ ॥

तदा सर्वां सिद्धिं निजकरतलीकृत्य कुशली,
मनोगत्या लोके विहरति महाभैरव इव ॥ १२ ॥
श्मशाने वा शून्ये शवहृदय मारुह्य विकटे,
विवासा निश्यद्धें निजगलितवीर्य्याक्तकुसुमैः ।
सहस्रै रर्काणां स्मितमुखि ! जपन्न र्चयति यो,
जन स्त्वा न्तध्यायि न्स इह भुवनाना मधिपतिः॥१३॥
वलिं भूताष्टम्यो र्वितरति च लोमास्थिसहितैः,
पलै रौष्ट्रै रोतु र्नरमहिषमेषादिभिरपि ।
वशीकृत्य स्वैरं जननि ! तव भक्तस्त्रिभुवनं,
यशोविद्यालक्ष्मीसुख मनुभवत्ये ष सुचिरम् ॥ १४ ॥

होय निसंक रात में जाई, बैठि चिता पर जपु जौ माई !
मरघट में शव ऊपर बैठी, करै सिद्धि सब निजकर पैठी ॥
वह कुसली जन मन अनुसारा, भैरव सम विहरै संसारा।
(मन्त्रप्रभाव प्रकट यह तोरा, बरनि सकै असको मतिभोरा)
सूनसान मरघट में जाई शव छाती पै चढ़िकै,
होय नग्न निचलाई राती निज वीरजसे मढ़िकै।
एक हजार मँदार फूल ते पूजै धरि कै ध्याना,
होय भुवनपति जगमें सोई भगवति ! भक्त महाना ॥१३॥
कृष्ण चौदसी अष्टमी, जो बलि देत तुम्हारि।
सहित लोम अरु अस्थि के, मांस कथित पसु मारि ॥
ऊँट मेष पुनि महिष नर, अथवा होय बिलार।
सो जन बस करि लेत है, त्रिभुवन मध संसार ॥
कीरति विद्या लच्छमी, सब सुख सेवहिं ताहि।
बहुत काललों नहिं तजैं, रहहिं सदा मन चाहि ॥ १४ ॥

भवे दग्धौ रक्ताम्बुजहवनत स्त्वर्थ मतुलं,
भवे द्राज्यं विल्वै ररुणकुसुमै र्वश्य मखिलम् ।
रजोभि र्नारीणा मपि भवति युक्तै र्हवनतः,
सुपत्रै र्विल्वाना मपि भवति सिद्धयष्टक मपि ॥ १५ ॥
मात ! र्दक्षिण कालिके ! तव पदद्वन्द्वारविन्दे रतिं,
कृत्वै तत्सरहस्य मद्भुत मिदं स्तोत्रं पठेत्सादरम् ।
तस्य त्वत्करुणाकटाक्षकलया खेलन्ति वक्त्राम्बुजे
कल्लोलाइव गद्यपद्यविभवै र्वैदग्ध्यमुग्धा गिरः ॥१६॥

इति श्री त्रिपाठि रामानन्द शर्मविनिर्मितः
श्यामास्तवराजः समाप्तः*

लाल कमल के हवन ते, होवै अर्थ विशेष ।
विल्व पत्र ते राज्य अरु, अरुन पुष्प बस लेख ॥
नारी रज जुत विल्वदल, होम किये ते होत ।
आठहु सिद्धी हस्तगत, मन्त्र प्रभाव उदोत ॥ १५ ॥
माई ! दच्छिन कालिके ! मन धरि तुव पद पद्म ।
पढ़ै स्तोत्र अद्भुत यही, सब रहस्य को सद्म ॥
तुमरी करुना दृष्टि ते, खेलहिं करि कल्लोल ।
गद्य पद्य बानी रुचिर, तिहि मुख मांहि अमोल ॥१६॥

---

* इस स्तोत्र का मंत्रोद्धार सहित विशेष विधान नारदीय पुराण के पूर्व भाग में ८५ वें अध्याय के आदि से ३४ वें श्लोक पर्य्यन्त सविस्तर वर्णन किया है—

(अनुवादक)

विरची श्यामा स्तुति भली, पण्डित "रामानन्द"
"नारायन पति शर्म" तिहि, किय भाषा सानन्द ॥१॥

* शुभम्भूयात् *

अर्जुन प्रेस, कबीरचौरा, काशी में मुद्रित ।

श्रीशौवन्दे

कवि-कुल-कथा



"ईश्वरः सर्वभूतानाम्"—ईश्वरकी सत्ता माननेवाले आस्तिक और नहीं मानने वालेही नास्तिक कहेजाते हैं, आजभी संसार में आस्तिक ही विशेष हैं नास्तिकों की संख्या नगण्य है, हिन्दू मुसलमान कुस्तान आदि कोई हों सभी ईश्वरवादी हैं, अनीश्वरवादी किसीमत अथवा सम्प्रदाय के नहीं हैं उनलोगों का तो "मुरारेस्तृतीयः पन्थाः" है, हाँ मनुष्य अवश्यही हैं इसमें किसी को कुछ कहना नहीं है, और न उनलोगों से हमे यहाँ कोई प्रयोजननहीं है। अस्तु जो लोग ईश्वरवादी हैं उनलोगों में भी इतने मतभेद हैं कि यदि सबकी गिनती की जाय तो हजारों की संख्या हो सकेगी फिर भी समस्त भूमण्डल में ईश्वरवादियों में भी ईश्वरको निराकार अथवा साकार अर्थात् निर्गुण या सगुण दोनोंही रूपसे मानने वाले लोगों के मत अपने अपने धर्मग्रंथों के विचारानुसार पृथक् पृथक् प्रचलित हैं। इस भारतवर्ष में सब दिन से धर्मकी प्रधानता रही है, आजभी धर्मभेद होनेही से यह प्रसिद्ध पवित्र कर्मभूमि छिन्न-भिन्न होरही है इसीसे समस्त देशवासी उथल-पुथल होरहे हैं, यद्यपि अनेक धर्म उपधर्मों में असंख्य मत मतांतरों की सृष्टिसे बड़े बड़े सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ है और आजदिन भी नये नये रूपोंसे प्रकट होरहा है, तथापि ईश्वरकी सत्ता पूर्ववत् सर्वत्र ही छायेहुए है, उसमें किसी प्रकार का अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता है- ऐसी दशामें जो लोग निर्गुण ब्रह्मके मानने वाले हैं उनलोगों के उच्चविचारपूर्ण ज्ञानों से यद्यपि हमलोगों के वेद वेदान्तादि दर्शनों में बहुतेरे ग्रंथ भरेपड़े हैं पर उनसे साधारण बुद्धि विचारवालों का मन सन्तुष्ट नहीं हो सकता, कारण उतनी धी सम्पत्ति उनके पास नहीं है, अतएव उनलोगों को सगुण ब्रह्म ही का शरण ढूंढ़ना पड़ता है। इस प्रकरण को गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने सुप्रसिद्ध

रामायण के बालकाण्ड ही में कागभुसुण्डिजी की कथा में बड़ी मनोरंजक वाणी में प्रकट करदिया है जिसका सार केवल—

"एक दारुगत देखिय एकू, पावक जुगसम ब्रह्मविवेकू।"

इस एकही वाक्यसे प्रगट होजाता है—ऐसी दशामेंजो दारुगत आग है वह तो किसी प्रकार से नहीं दिखाई पड़सकती परन्तु जो दृष्टि पड़ती है उसीसे अदृष्टाका भी ज्ञान होता है। इस ग्रंथमें इसी विषय का स्पष्टीकरण-श्रुति स्मृति-पुराण दर्शन योगवासिष्ठ आदि अनेक प्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थोंसे प्रमाणों को उद्धृत करके दिखलाया गया है, कि सगुण ब्रह्महो यह संसार है, इस विश्वसे भिन्न कोई दूसरा ब्रह्म नहीं है, अतएव उस ब्रह्मका नाम विश्वरूप है। उसी विराड्रूप का इस ग्रन्थ में विवरण किया गया है। अतः इस ग्रन्थका नाम "विराड्-विवरण—" ही अपना उद्देश्य प्रकट करदेता है फिर भी कुछ भूमिका लिखना केवल-आधुनिक प्रथाका प्रतिपालन ही करना है—जो हो यह ग्रन्थ संवत् १७१३ वैशाख कृष्ण त्रयोदशी १३ शनिवार को समाप्त किया गया है—और इसकी इतिश्री में भारतके प्रसिद्ध सम्राट् अकबर के प्रपौत्र जहाँगीर के पौत्र और शाहजहाँ के जेष्ठपुत्र दाराशिकोह का नाम उल्लिखित किया गया है कुलके वृद्धलोगों से ऐसा सुनागया है, कि जब दाराशिकोह काशीमें वेदान्त शास्त्रका अध्ययन करने के लिये आये थे, तो उस कालके सभाओंमें प्रथम पूज्य पण्डित रामानन्द त्रिपाठीजी से मिले थे, और उनके सत्समागम से बहुत सन्तोष लाभ किया था और उन्हीं के कहने पर पण्डितजी ने इसग्रन्थको लिखा था—इसीसे—"नियुक्त—" पदकी योजना की गई है। इसकी मूल प्रति आजतक मेरेपास वर्तमान है। परन्तु उसकी और इन्ही बाबा रामानन्दजी के बनाए हुए नायिका भेद के "रसिक जीवन" नामक ग्रन्थको जिस-पर मेरा बनाया हुआ हिन्दी में पद्यानुवाद भी है, आराजिला के केशठ गाँव के जमींदार वेंकटेशप्रसाद सिंह मुझसे देखने के लिये मँगनी माँगकर लेगये बहुत दिन बीतने पर भी जब पुस्तक उन्होंने नहीं लौटाया तो मुझे लाचार होकर उनसे मिलकर माँगना पड़ा—पर उन्होंने मुखचेष्टा विकृत करके यह कहा कि "आपकी पुस्तक कहीं खोगई है हम उसको तलाश रहें है मिलजाने पर तुरत आपके-

पास पहुँचा देंगे हम आपसे बहुत ही लज्जित हैं जो आपकी रचित और स्वहस्तलिखित पुस्तक हमारे द्वारा खोगई है। हमको तो ऐसा मालूम पड़ता है कि किसीने उसे चुरालिया है—" अस्तु जी मसोसकर क्या रोकर सभ्यता का ख्याल करके मुझे लाचार होकर पुनः भाषानुवाद के चिट्ठोंका संग्रह करके तथा जो नहीं मिले उन-श्लोकों का अनुवाद पुनः लिखना पड़ा—कुशल इतना ही हुआ कि संस्कृत की मूल प्रति मेरे पास मौजूद थी—अस्तु इस घटना के कई वर्षके बाद एकरोज मैं काशी से प्रकाशित "ब्राह्मण महासम्मेलन—" नामक अखबार जो मिती श्रावण शुक्ल १४ सोमवार तथा १६ अगस्त सन् १६२६ का प्रथम वर्ष की ३४ संख्या का साप्ताहिक अंक था पढ़ने लगा तो ६ वें पृष्ठके चौथे कालम के शिरोभाग पर मेरी दृष्टि अचानक जा पड़ी क्योंकि समाचार पत्रों में "प्राप्ति-स्वीकार" देखने की विशेष अभिरुचि नहीं रहती, अस्तु उसमें ग्रंथ और ग्रन्थकर्त्ता का नाम पढ़ते ही कानखड़े होगये श्रीमान् बाबू साहब की शुभस्मृति आकर सामने खड़ी होगई—अखबारका लेख अविकल उद्धृत करदेता हूँ।

"प्राप्ति-स्वीकार।"

रसिक जीवनी—मूल लेखक बाबू वेङ्कटेशप्रसाद सिंह टिप्पणी-लेखक साहित्याचार्य व्याकरणशास्त्री पं० हरगोविन्द मिश्र, मूल्य १। काशी में मिलने का पता—मास्टर खेलाड़ीलाल, संस्कृत बुकडिपो, कचौड़ीगली, काशी,।

पुस्तक को देखने से जान पड़ता है कि यह पुस्तक साहित्य दर्पण के तृतीय परिच्छेद-वर्णित नायकनायिकाभेद प्रदर्शन के लिए लिखीगई है, पर इसकी शैली भिन्न है। स्वरचित श्लोक हिन्दी पद्य एवं साहित्याचार्य जीकी छन्दपरिज्ञानार्थ टिप्पणी और अन्वय के समावेश होजाने से सर्व-साधारण के अतिरिक्त छात्रों के लिएभी उपयुक्त होगई है, आशा है, भावुक साहित्यिक नवयुवकों में इसका विशेष सम्मान होगा।"

दूसरेही दिन मैंने उक्त दूकान से १ प्रति मूल्य भेजकर मँगवाली उसको अद्योपान्त बहुत राततक जागकर पढ़तारहा नये कवि की

कृतियों को खूब जीजानसे विचार पूर्वक देखा कई दिन में जहाँ जहाँ "सिंह—" कविने बूढ़े ब्राह्मण के नाम को काटकर अपना नाम लिखा था अथवा दो एक शब्दों के बदलने किंवा स्थान भ्रष्ट करने का उद्योग किया था उन सब स्थलों को रक्तमसीसे चिन्हित किया अन्त में उसी "रसिक जीवनी—" के अन्तिम पृष्ठपर यह विज्ञापन भी छपा छपाया नयनानन्ददायक होगया।—

"साकारेश्वर मण्डनार्थ—"

विराडरूप निरूपणम्।

(संस्कृतम्)

श्रीमान् वेङ्कटेशप्रसाद सिंह लिखित। विधाता की सम्पूर्ण सृष्टि में भारतवर्ष ही धर्मप्रधान देश है। यद्यपि यहाँ भी अनेक धर्मोपधर्म प्रचलित हैं तथापि त्रिकाल में एकसमान आदरणीय तथा सर्व वर्णव्यवस्थापक सनातनधर्म हीं सर्वप्रधान माना जाता है। इसके अनेक अंशों में विरोधी बहुत मत प्रचलित हैं, इन्हीं मतों में से ईश्वरको निराकार माननेवाले भीं हैं। इसमें श्रुति, स्मृति, पुराण गीता, उपनिषद्, तथा दर्शन आदि करीब २५ से अधिक ग्रन्थों के प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिखाया गया है कि ईश्वर साकार हैं। इसके पढ़ने से निराकारेश्वर वादियों को ठीक २ उत्तर दिया जा सकता है। पुस्तक देखने पर आपलोग स्वयं प्रशंसा करेंगे। कागज छपाई आदि सब सुन्दर रहने पर भी दाम बहुत कम रक्खा गया है। मूल्य ।)

पुस्तक मिलने के पते—

१ मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो, कचौड़ीगली।

बनारस सिटी।

२ श्री हेड मैनेजर C/O श्री वें० प्र० सिंहजी

मु० पो० केसठ (शाहाबाद)

इस पुस्तकस्थ नोटिसने मुझे उतावला बना दिया तुरत दूकान से २ प्रतियां "विराड् रूप निरूपणम्" की भी मंगवानी पड़ी पर इसमें हमारे नवीन ग्रंथकारका विना परिश्रम केवल इतिश्री में नाम

बदल देना तथा यतः ततः बीच बीचमें त्वम् अर्थात् "पृष्ठ भागः" के स्थान पर "पृष्ठभागत्वं" और विशेष रूप से "अवच्छिन्न" लगा कर अपने को नैयायिक लिखने का हौसिला पूरा कर दिखाने की चतुर चापलता का भी विराड् रूपनिरूपण आपसे आप होगया।

इसके थोड़े दिन बाद काशीके प्रसिद्ध दैनिक "आज"—नामक समाचार में जो आश्विन कृष्ण ११ रविवार सं० १९८६ वै० तथा २९ सितम्बर सन् १९२९ ई० को छपा था सातवें पृष्ठके प्राप्ति स्वीकार—के चौथे कालम में यह रूपाक्षर देख पड़ा।

"रसिक जीवनी।

लेखक और प्रकाशक—श्री वेङ्कटेश प्रसाद सिंह ग्राम और डाक घर केसठ, जिला शाहाबाद। पृष्ठ संख्या ११२ मूल्य १)

इस पुस्तक में नायक और नायिका के लक्षण संस्कृत श्लोक में वर्णन करके उसका अनुवाद हिन्दी पद्यमें दिया है।"

बस अब यह निश्चय हो गया कि यह उद्योग केवल कवित्व सिद्ध करनेही के लिये नहीं किया गया है बल्कि अर्थायत्वावच्छिन्न भी है।

ये दोनो ही पुस्तकें अर्थात् "विराड रूपनिरूपणम्" संवत् "१९८४ वैक्रमाब्दाः" में और "रसिक जीवनी" उसके दो वर्ष बाद "१९८६ वै०" में—इसी काशी के "विद्याविलास"—नामक प्रेस में छपाई गई थी जिस प्रेसके "काशी संस्कृत सीरीज" में मेरी बनाई हुई जगत्प्रसिद्ध शिव महिम्नः स्तोत्र की पंचमुखी टीका अर्थात् महिम्न के प्रत्येक श्लोकों पर (१) संस्कृत टीका (२) संस्कृत पद्यानुवाद और, (३) हिन्दी टीका, (४) हिन्दी पद्यानुवाद तथा (५) भाषा बिम्ब। अर्थात् भाषा के उसी शिखरिणी आदि छन्दों में टीका भी सं०१९६६ (१९२४ ई०) की पुस्तक मालामें प्रकाशित हो चुकी थी। उसकी—भूमिका में महिम्न के ३२ वें श्लोक "असितगिरिसमं—" को जिसे इस ग्रंथ में स्मृति कहके लिखा है उल्लेख किया गया था, अस्तु लाचार होकर मुझे इस नवीन गून्था पहारी कविराज को कुछ शिक्षा दे देना अत्यावश्यक होगया क्योंकि "जगन्नाथ, पण्डितराज ने" अपने—"भामिनी विलास" में यह स्पष्ट लिख दिया है कि—

"दुर्वृत्ता जारजन्मानो, हरिष्यन्ती तिशङ्कया।
मदीयपद्यरत्नानां, मञ्जूषैषा मया कृता ॥"

वास्तव में यह देखा जाता है कि. आज कलके बहुतेरे कवि अथवा लेखक लोग स्वयं योग्यता के अभाव से कुछ प्राचीन कवियों के भाव वा कविता अथवा लेखको कुछ इधर उधर उलट पलट कर कविगणमें अपनी गणना कराने की उत्सुकता कभी २ दिखा देते हैं, पर ग्रंथ का पूरा ग्रंथ ही उठाकर उसमें ग्रंथकारके नाम को उड़ा कर अपना नाम कविता में भी बदल कर—घुसेड़ देने का परम नीचता पूर्ण साहस प्रकट करने वाला मुझे तो यही एक निराला अ॰ला अलबेला दुःसाध्य कवि (पि) मिला। भला इतनी ढिठाई चोरी में भी तो कोई दिखलावे कि—

"रामानन्दकवे स्तदेत दनिशं काव्यामृतं पीयताम्।"

रसिक जीवन, प्रथम तरङ्ग श्लो॰ ४

इसमें-"वैकुण्ठेशपितुः"—बस इतनाही भर बदलकर काम पूरी तरह से चला लिया गया है, योंहि दस बारह पद्यों में जहां जहाँ कविने अपना नाम उल्लिखित किया है सर्वत्रही यही कवित्व शक्ति दरसाई गई है। इस विषय में एक अनूठी बात विशेष विचारणीय है-प्राचीन कवि लोग तो अपना नाम लिखते ही नहीं थे जैसे महा कवि कालिदास-भारवि आदि, हां नाटकों में प्रस्तावना स्थल में नटआदि के मुखसे कवि और तत्कृत ग्रंथ वा नाटक का नाम उल्लिखित कराने का नियम अवश्य पाला गया है, पर उसके बाद मध्यम कालके कवियों ने हिन्दी के ग्रंथकार सूरदास तुलसी दास आदि की भांति कहीं कहीं उपयुक्त स्थलपर नामोल्लेख का प्रयास उठाया है, क्योंकि हिन्दी की घनाक्षरी सवैया आदि बड़े बड़े पद्यों में तो व्यर्थ होने पर भी नाम लिखने का मौका कहीं न कहीं मिल ही जाता है, परन्तु संस्कृत श्लोकों में नामोल्लेख को केवल नाम सूचकही नहीं वरन प्रासङ्गिक और सार्थकही प्रयोग करना अत्या-वश्यक हो पड़ता है क्योंकि हिन्दी की तरह संस्कृत में विभक्ति के रूप और समासों के झगड़े से बच निकलना दुष्वार हो जाता है। फिर भी मध्यकालीन कवियों ने जहां मौका पाया है अपना नाम

रखही दिया है जैसे पूर्वोक्त "पण्डितराज" ने जोकि सूर तुलसीही के समकालीन थे अपनी "गंगा लहरी में"—

"जगन्नाथस्या यं जननि ! जननो द्धार समयः ।"

अथवा हमारे बाबा रामानन्दजी ने केवल अपने "रसिक जीवन हीं के प्रथम तरंग के—२।६।१८।१६।२२।२४।२८।५३।६८ वें पद्यों में तथा च द्वितीय तरङ्ग के-२।५।७ वें श्लोकों में अपना नाम धरदिया है—मालूम होता है कि इन लोगों की पवित्र आत्मायें भावी तस्कर कविराजों की करतूतों का कुछ २ अनुभव करती रही होंगी, तभी तो महिम्न स्तोत्र पर हरपक्ष और हरिपक्ष की दुहरी टीकाकार "गोस्वामी मधुसूदन सरस्वती जी ने" अन्त में यह लिख दिया है-

"टीकान्तरं कञ्चन मन्दधी रितः,
सारं समुद्धत्य करोति चे त्सदा ।
शिवस्य विष्णो र्द्विजगोसुपर्वणा—
मपि द्विषद्भाव मसौ प्रपद्यते ।"

अस्तु इन महात्माओं ने जो कुछ पहिले ही विचार कर लिख दिया है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन हम लोगों को प्रकट रूपसे दीख पड़ता है। वास्तव में कविके नामोल्लेख कर देने से कवि की कृति और स्मृति जागरूक रहती है, अस्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में एक "चोर" कविका बनाया हुआ "चौरपञ्चासिका" नामक एक छोटा सा ग्रंथ प्रचलित है, और "माघ श्चोरो मयूरः"—इत्यादि कविगणना में नाम उल्लिखित होने परभी चोर कवि की कविता में कहीं भी चौर्यत्वावच्छिन्नता नहीं दीख पड़ती, जैसी कि इस हमारे–नवीन नैयायिक कवि ने दरसाई है-हमारे पूर्व पुरुष पं० रामानन्दजीको "दाराशिकोह" ने "विविधविद्याचमत्कारपारद्रुम—" की पदवी प्रदान की थी, और जब कंस की परिपाटी ग्रहण करके औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहांको कैद करके अपने ज्येष्ठ सहोदर दाराशिकोह को कतल करवाया था तो उस समय में हमारे बाबा रामानन्द जी ने अपने दुखित कातर हृदय से ये शोक संतप्त—उद्गार लिपिबद्ध किये थे—

नो सैन्यं चतुरङ्ग मीश्वरकृपानाशे प्रभूतं धनं,
नो वा पौरुष मात्मनो न च नृपान्मन्ये समर्थान्यतः।
दाराशाहमहीपति र्दशहयै वीरागैबाग्रामतो,
यात स्तां मधुरां कथञ्चि दकरो द्विश्रान्ति मेकक्षणम् ॥१॥
येनेयं धरणी समुद्रवलया प्रत्यर्थिभूपालया-
प्येकीकृत्य वशीकृता हि नितरां दिल्लीनृपेण स्वयम्।
रङ्गान्तक्षितिपेन सोऽपि वत यत्कारगृह प्रापितः,
तस्माद् दैवशणाम्बुजाक्षरमर्थी मन्ये समर्थां लिपिम् ॥२॥
येने यं श्रीदकाशीसकलकविजनोद्दामदानप्रकाशै--
राकीर्णा धर्मवर्णामृतयुतसलिलैः संस्कृता स्वर्णदी च।
आकूपारं क्षितीशो नतिविनयमति र्यश्च कर्त्रेश्वर स्तद्,
दाराशाहेन्द्रमौले र्विपदि कथ महो जीवनीयं हि विश्वम् ॥३॥
धर्मं स्तुर्य्ययुगे न तेन जयति त्वे काङ्क्षितां आवितो,
याव त्ताव दपुण्यपण्यनिरतं निर्जित्य दानैः कलिम्।
यः पुण्यामृत वाहिनीं सुकृतवा न्विश्वंभरां श्रीदतद्--
दारासाहविपत्सु हा! कथ महो प्राणा न गच्छन्त्यमी ॥४॥

इन्हीं दाराशिकोह की बैठक जो कि दालकी मण्डी में पुरानी अदालत के नामसे अबतक काशी में मौजूद है, और इन्हीं की बनवाईहुई सराय राजघाट के स्टेशन वाली सड़क में कटजाने से अबतक सड़क के दोनों तरफ भग्नावशिष्ट वर्तमान है, एवं बनारस का "दारानगर" और प्रयाग (इलाहाबाद) "का दारागंज" महाल भी उन्हीका जागरूक स्मारक है।

पं० रामानन्दजी अपने समय में काशी के विद्वन्मण्डली में सर्व प्रधान थे इस कारण से सभाओं में प्रथम पूजा उन्हींकी होती थी, इनके पिता पण्डित मधुकर त्रिपाठी थे वे भी बहुत बड़े विद्वान थे, पण्डित रामानन्दजी की अटल पितृभक्ति उनके बनाये हुए प्रत्येक

ग्रन्थ क्या छोटे २ स्तोत्रादिकोंमें भी पिताके नामोल्लेख ही से स्पष्ट दीख पड़ती है। इनके बनाये हुए कईक ग्रन्थ यद्यपि खंडित हो गये हैं पर अब भी जो मेरे पास बँचे खुँचे रहगये हैं उनकी छोटी तालिका यह है—जिनमें पहिले स्तोत्रों की सूची दी जाती है।

स्तोत्रों की अनुक्रमणिका।

इन स्तोत्रों में कुछ तो पूर्ण हैं और कुछ खंडित होगये हैं। हस्त लिखित पुस्तकों के हस्तान्तरित होनेपर प्रायः ऐसी घटनायें हुआ करती हैं जिसका उदाहरण मैं स्वयं बन बैठा हूँ, अतः स्तोत्रों की श्लोक संख्या और जिनमें समयोल्लेख हुआ है उन सबको यथा कथञ्चित उद्बोधन करादेना आवश्यक है।

स्तोत्रनाम श्लो० सं० छन्द तथा समय

१ **रुद्रताण्डव** । ८ । पंच चामरछन्द। सं० १९४४ में देवी स्तवराज और चतुर्भुजाष्टक के साथ छपवाकर धर्मार्थ बांटा गया था।

२ **सदाशिवस्वरूप स्तुतिः** ।८ । दण्डकछन्द, १७५९ वैशाख कृ० १ शुक्रवार इसके आदि के २॥ पद्य नहीं प्राप्त हुए हैं।

३ **महाकाल स्तोत्र** । दण्डकछन्द केवल आदि के दो श्लोक लब्ध हुए हैं।

४ **शङ्करस्तोत्र** । त्रिभङ्गी छन्द, आदिम पद्य के अनन्तर कुछ द्वितीय पद्य का भाग लब्ध हुआ अतः श्लोकसंख्या का ठेकाना नहीं।

५ **भास्करस्तोत्र** । ८ । (दंडकछन्द, सं० १७५५ भाद्र शु० ६ शनि)

६ **मार्तण्डस्तोत्र** । स्रग्धरा छन्द, ५॥ श्लोक तक लब्ध होने से अंत का पता नहीं।

७ चतुर्भुजाष्टक । ८ । (पंचचामर छं० सं० १७२३ फाल्गुन का बना है और सं० १९४४ में देवीस्तवराज के साथ छपाया गया था)

८ कृष्णाष्टक । ८ । (उपजातिछन्द सं० १७२४ ज्येष्ठ १२ शुक्रवार)

९ रामाष्टक । ८ । (अनेक छन्दों में है)

१० रामकीर्ति तोत्र । ५ । (शार्दूल० स्रग्धरा छन्द)

११ आद्यास्तवराज । १४ । (स्रग्धरा, शिखरणी, शार्दूल०)

१२ श्यामास्तवराज । १६ । (स्रग्धरा, शिखरणी, शार्दूल० छन्द) (इस ग्रन्थ के साथ सानुवाद छपा है ।)

१३ बगलामुखी स्तवराज । १५ । (शार्दूल वि० शिखरिणी)

१४ देवीस्तवराज । १० । (त्रिभंगी छन्द, सं० १९४४ में रुद्र ताण्डव और चतुर्भुजाष्टक के साथ अमरप्रेस काशीमें छपा था)

१५ विन्ध्येश्वरीपञ्चक । ५ । शार्दूल० यह पूर्ण नहीं मिला अतः पंचक लिखा है ।

१६ विन्ध्यवासिनीकल्पद्रुम स्तोत्र । ८ । स्रग्धरा छं० सं० १७४२ सा० सु० १ बना है और सं० १९६१ में छपवाकर धर्मार्थ बँटा ।

१७ महिषमर्दिनीस्तव । १० । (पृथ्वी छन्द ८ शार्दूल० २ सं० १७४४ वैशाख शुक्ल १३ शुक्रवार को बना (संस्कृत स्तोत्र है)

१८ दुर्गाष्टपदी । ९ । (आर्याछन्द)

१९ गङ्गाष्टपदी । ९ । (आर्याछन्द)

२० जाह्नवीस्तुति । ८ । (स्रग्धरा, शार्दूल० पृथ्वी छन्दों में)

२१ गङ्गालहरी । ८ । (त्रिभंगीछन्द,)

२२ गङ्गास्तव । १६ । पज्झटिका (चौपाई) छंद सं० १७२१ अगहन १)

२३ गङ्गामृताष्टक । स्रग्धरा छन्द, ६ श्लो० लब्ध, अन्त अदृश्य ।

२४ गङ्गाष्टक । ८ । (शार्दूलवि० । और अन्तिम १ पृथ्वी)

२५ मणिकर्णीकुसुम । ८ । (त्रिभंगी सं० १७४२ भाद्रकृ०१३)

२६ कलिकौतुकाष्टक । ८ । (मन्दाक्रान्ताछन्द)

२७ कामाष्टक । ८ । (मंदाक्रान्ता छन्द)

२८ कोपाष्टक । ४ । मंदा० छ० पूरा न मिलने पर ४ पूर्वार्ध है ।

२९ लोभाष्टक । ८ । (मंदाक्रान्ता छन्द है)

३० मोहाष्टक । ४ । (मंदाक्रान्ता छन्द-इतनाही भर मिलसका)

३१ मोहनाशन ।

३२ आत्मस्तोत्र । इसके केवल तीन पद्य त्रिभंगीछन्द के मिल सके अन्त का पता नहीं होने से श्लोक संख्या नहीं ।

३३ विष्णूत्थापनस्तोत्र । स्रग्धरा केवल १॥ श्लोक मिला है ।

३४ तारापति (चन्द्र) स्तोत्र । शार्दूल वि० ३ श्लोक लब्ध ।

ग्रन्थों की तालिका ।

१ **वेदमन्त्रार्थसंग्रहः ।** इसमें वेद के प्रचलित प्रायः नित्य अथवा श्राद्धादि में व्यवहृत होने वाले मन्त्रों के सामान्य अर्थ भाष्यानुसार संगृहीत किये गये हैं ।

२ **तत्वदीपिका ।** सिद्धान्त कौमुदी (व्याकरण का सर्व प्रसिद्ध प्रकरण ग्रन्थ) की टीका है । यह टीका हलन्त स्त्रीलिङ्ग तक आदि से मिलती है पर आगे कहीं कुछ तिङन्त में और कुछ कारक में भी खण्डित मिली है इसका मङ्गलाचरण इसप्रकार से लिखा है ।

"नत्वा साम्बसदाशिवाङ्घ्रियुगलं कृत्वा गुरो र्वन्दनं,
स्मृत्वा चापि समन्ततो र्थगहना स्ता स्ता मुनीनां गिरः

शिष्याणा मनवद्यबुद्धिविमलज्ञानाय, सत्कौमुदी—,
टीकामुक्तिविशेषयुक्तिनिकरैः कुर्मः प्रमाणास्पदाम् ॥१॥"

३ तर्कगुम्फणा । इसमें प्रायः तर्क संग्रह को ललित पद्यों में इस प्रकार से बद्ध किया है कि विद्यार्थी लोग विना प्रयास के सब विषयों को समझ भी जांय और कण्ठस्थ भी करलें ग्रन्थ पूर्ण होने पर भी अधूराही मिला है। इसका कुछ उदाहरण (वानगी) देखिये

चक्षुर्ग्राह्यगुणो हि रूप मुदितं शुक्लादिभिः सप्तधा,
जिह्वाग्राह्यगुणो रसोहि मधुराम्लाद्यै र्मतः षड्विधः ।
घ्राणग्राह्यगुण स्तु गन्ध उदितो य स्तु त्वचा गृह्यते,
स स्पर्शः कथितः सचापि कथितः शीतादि भेदै स्त्रिधा ॥१०॥
"एकत्वादिजगत्प्रसिद्धगणना, संख्या त्र सङ्ख्यावतां,
मानं तत्परिमाण मत्रहि पृथक् पार्थक्य मत्रोच्यते ।
संयोगादिविनाशक स्तु कृतिभिः प्रोक्तो विभागः परो,
यस्तु स्याद्व्यवहारतः कणभुज स्त त्स्या त्परत्वादिकम् ।
साक्षात्कार प्रमायाः करण मपि चतुर्भेदसंकेतसाध्यं,
सप्रत्यक्षानुमानोपमितिसमुदितं यन्मतं स्या त्सशब्दम् ।
तत्र् धा स्या त्पटादौ तदपि च समवायी नञोक्तस्तदन्यो
'रामानन्दो'क्तयुक्त्या भवति तदपर स्या त्रि मिरांत्र नोयम् १५

प्रत्यक्षे यदभाववत्यभिहितं प्राज्ञैः कणादादिभि,-
स्तर्को क्त्या हि विशेषणेन सहितो भावो विशेष्यात्मकः ।
कुम्भो नास्ति महीतलेऽत्र कथितः स्या त्सन्निकर्ष स्ततो,
"रामानन्द" मतं तदेव मुनिभिः प्रत्यक्ष मेतन्मतम् ॥ १८ ॥
इति प्रज्ञावतां प्रीत्यै तर्क ज्ञानार्थसिद्धये ।
"रामानन्देन" विदुषा, कृता प्रत्यक्षगुम्फणा ॥ १६ ॥
व्याप्यत्वा सिद्धपक्षे भवति गिरि रयं वह्निमान धूमवत्त्वा—,

दत्तो यापि कणादः स्वय मिह जगदे सङ्गमाद्रेन्धनस्य ।
मैत्रीपुत्रेऽसितत्वं स्फटिकगतजपापुष्पलौहित्य मेवं,
"रामानन्दे" रसीत्थं कविभिरभिहितं द्वैत मद्वैततरे ॥ ४ ॥
उपमितेः करणं सुपमानकं, यदिह गोसदृशो गवयो मतः ।
वनगतः पुरुषा दवधारय—न्नय मसौ पुरुषः प्रतिपद्यते ॥ १ ॥
आप्तोक्तं पदपुञ्ज मत्र कणभुक्-तन्त्रेषु शब्दो मतः,
शक्तं तत्पद मुच्यते पदमिदं गामानये त्यादिकम् ।
आकाङ्क्षादिसहेतुकः सच मत स्त द्वैदिकं लौकिकं,
द्वेधा वैदिक मीश्वरोक्त मखिलं चात्र प्रमाणीकृतम् ॥ २ ॥
उक्तो यथार्थानुभवः सहेतु, स्त्रिधा यथार्थानुभव स्त्विदानीम्
विनन्यते वादविदां प्रमोद-प्रदं विदग्धप्रतिपत्तिहेतोः ॥ ३ ॥
स्या देष संशयविपर्य्ययतर्कभेदा,त्रेधा विरुद्धमति कृत्सतु संशयोऽत्र
स्थाणुर्भवेदय मसौ पुरुषोथवेति, स्यात्संशयः सतु मतो न यथार्थरूपः
मुधायत्तु ज्ञानं तदिद मुदितं स्यात्पर मिदं,
यथा शुक्ता वेत द्रजत मिति बुद्धि र्भ्रमकृताम् ।
स तर्को यद्व्याप्यप्रथितसहजारोपकथितो,
न वह्निर्नो धूमस्सतु भवति सव्यापकगतः ॥ ५ ॥
सुखं हि दुःखं हि कणादरीत्या, नुकूलवेद्यं प्रतिकूलवेद्यम् ।
इच्छा हि कामः कथितो मुनीन्द्रै, र्द्वेषो हि मन्युर्हि कृतिः प्रयत्नः ॥६॥
स धर्म्मो य स्त्वीड्यो विधिविहितकर्म्मैकविदितो,
निषिद्धाचारो यः स इह कथितोऽधर्म फलकः ।
त्रिधा स्या त्संस्कारः सकलमुनि तर्कोक्तवचने,
ध्रुवं "रामानन्द" द्विजवरकवित्वामृतमते ॥ ७ ॥

इस प्रसंग में अधिक पद्य उद्धृत होगये हैं, आगे चलकर पाठक महोदयों को इतना कष्ट नहीं दिया जायगा—घबड़ाने से कवितामृत पानमें विच्छेद का डर बना रहता है। इसीसे मुक्तावली की खण्डित

टीका की भी चर्चा छोड़नी पड़ी।

४ वैद्यक-में एक औषध संग्रह प्राप्त हुआ है, पर उसमें अथ वा इति नहीं लगाई गई है, ऐसा ज्ञात होता है कि उसपर और लिखने की इच्छा थी पर पूरी हुई या नहीं परंतु कविता ललाम है, ग्रन्थ साधारण होने पर भी अनुभूत और उपयुक्त ज्ञात होता है कुछ उदाहरण (नमूना) परीक्षार्थ देता हूँ—

यथा—सांप विच्छू के विषय में—

"यः पिबति पुष्यदिवसे, जलपिष्टं सितपुनर्नवामूलम्।
तत्सन्निधौ न वर्षं, वृश्चिकभुजंगाः प्रसर्पन्ति॥"
"लज्जावतीमूलविलिप्तपाणि, र्बद्ध्वा थवा यत्र तदीयमूलम्।
गृह्णाति सर्पान्प्रमतोऽतिघोरान्, हठात्सुपर्णप्रतिमप्रभावः॥
अपहरति मण्डलिविषं, पानेना लेपनेन वा सद्यः।
काकजंघा मूलं, काञ्जिकपरिपेषितं पुंसाम्॥"

तथा च वृश्चिकविषशमनम्—

"लवणं घृतं सैन्धवचूर्णयुक्तं, निपीतं वृश्चिकविषापहम्।"

अब एकठो "कस्तूरिकाद्य" चूर्ण चख लीजिए तब बस,

"कस्तूरिका कुङ्कुम कुम्भकोश, जातीफलं मोचरसोऽजमोदा।
माजूफलं सस्फटिकाद्यकान्ति, समाभिधेयां करहाटकञ्च॥
यो माषमात्रं दिवसावसाने, नरोऽत्ति चूर्णं पयसानुपानम्।
स चण्डवेग श्चिरशुक्रधारी, नारीशतं द्रावयति प्रसंगात्।

इसमें बहुतेरे चूर्ण रस रसायन धातु मारणादिकी विधियां हैं।

"अथ गर्भधानाधिकारः।

मूलं या लक्ष्मणायाः पिबति ऋतुमती गर्भबद्धानुरागा,
पुष्यार्कादिप्रसङ्गा त्कथमपि विधिना साधकैः प्रापितायाः।

जीवद्वत्सैकवर्णोद्भवसुरभिपयः पेषितायास्तदानीं,
"रामानन्द" प्रसंगा झटिति खलु भजत्येव बन्ध्यापिगर्भम्॥

अब यह वैद्यक प्रकरण लेख विस्तार कर रहा है अतएव और भी अनेक उपयोगी विषयों का छोड़कर आगे चलना आवश्यक है, अतः पाठक गण क्षमा करें। पर इसके साथ हिन्दी भाषा में भी पद्यबद्ध कुछ अनुभूत औषधों का प्रयोग मिला है—संक्षिप्त उदाहरण ले लीजिए—

लाची तजपत्रज त्रिकुट, बंश विलोचन जानु।
नागकेसरी सहित सब तोला तिन तिन मानु॥
सब मिलाइ के खाइये, चूरन सुभग बनाइ।
रामानन्द सुनासिका, रुधिर थंभ ह्वै जाइ॥

इसमें वाजीकरन, स्तम्भन, औ द्रावणादि की विशेषता है, अतः कुछ अश्लीलता का दोष आजाना आवश्यकही ठहरा तब अब इस प्रकरण की इति।

५ ज्योतिष—इस विषयपर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिला परन्तु कईक कुण्डलियाँ उन्हीं की बनाई मिली हैं वरन एक कुण्डली शाहजहाँ बादशाह की भी उनकी हस्त लिखित है जिसमें विक्रम सं० १६४८ और शालिवाहन शक १५१३ माघ मास शुक्ल १ पड़िवा बुधवार को जन्म का उल्लेख किया गया है, और नाम खुरम सुलतान लिखा है इतिहासज्ञों को इस तारीख के जाँचने समझने का पूरा अधिकार है मैं तो जन्मपत्री की स्तुति का एक श्लोक उद्धृत कर देता हूँ—

"लोकानां सौख्यदात्री सुतजयजननी तुष्टिदायुःप्रदात्री"
माङ्गल्योत्साहकर्त्री गतभवसदसत्कर्मणां व्यञ्जयित्री।
नानासम्पद्विधात्री धनकुलयशसां सर्वदा वर्द्धयित्री,
विघ्नापद्विघ्नहन्त्री गुणगणवसति लिख्यते जन्मपत्री॥"

६ **निर्णयार्णव**—यह सामान्य रीति से तिथि पर्वों का निर्णय सप्रमाण करता है—सं० १७३५ का समयोल्लेख है। अपूर्ण है।

इसी प्रकार से शकुन शास्त्र में भी एक निर्णय ग्रन्थ लब्ध हुआ है, पर खेद से कहना पड़ता है कि वह भी पूर्ण नहीं है, अस्तु उसका भी दो एक उदाहरण देखना चाहिए—प्रायः कौवे सभी लोगों को सब जगह यात्रादि में मिला ही करते हैं तो पहिले उसी शकुन को विचारना चाहिए—

> दन्तिस्तम्भगतो गजेन्द्रफलदो राज्यं हयस्थो गवां,
> लाभं धेनुगतो महोत्सवकरः स्याद्गृहे संस्थितः।
> क्षेत्रे क्षेत्रफलप्रदः खरगतो रोगं मृतिं माहिषे,
> प्रासादेऽपि तथोन्नतिं प्रकुरुते ध्वाङ्क्षो ध्वजस्थो जयम्॥
> बन्धं रज्जुमुखोऽस्थिखण्डवदनो विघ्नं पुरीषे तथा,
> शुष्के भीति मसौ प्रयच्छति रणं पिच्छं मुखे धारयन्।
> पुष्पास्योऽर्थफलप्रदः शुचमसौ धत्तेऽथ दग्धाननो,
> "रामानन्द" मनीषिभि र्विरचितः काकक्रमः शाकुनः॥

इसमें सियार आदि का भी शकुन लिखा गया है प्रायः २० श्लोक मिले हैं।

८ **वैदिक कर्मकाण्ड**—इस विषय में अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं—यथा (१) विवाह पद्धति सटीक (२) षोडश क्रियानुक्रम (३) आरामोत्सर्ग (४) जलाशयोत्सर्ग (५) वनोत्सर्ग। इत्यादि पर, षोडशक्रियानुक्रम ही सम्पूर्ण मिला है—जिसका आदिम पद्य यह है—

> "नत्वा श्रीगणपंगुरुं ग्रहगणान् गौरीं गिरं देवतां,
> दिक्पालान्सकलान्समस्तकलशाधिष्ठातृ देवानपि।
> "रामानन्द" कविः करोति कृतिनां मोदाय सङ्क्षेपतो,
> रम्यं षोडशकर्मणां मृदुपदैस्तत्क्रियानुक्रम्॥ १॥"

इस ग्रन्थ में अन्य प्रबन्धों की अपेक्षा कवि ने अपने दादा और दादी का भी नाम उद्धृत किया है क्योंकि अन्य स्थलों में केवल अपने पिता "मधुकर" ही का नाम सादर लिखा है पर इसमें नाम बढ़ा दी गई है यथा—

११-तन्त्रशास्त्र पर बाबा को विशेष श्रद्धा ज्ञात होती है क्योंकि लिखित अनेक स्तोत्रों में तान्त्रिक मन्त्रों का उद्धार किया है—इस "विराड् विवरण" के साथ में भी एक "श्यामास्तवराज" छपा है, जिसमें काली के मन्त्रोंका उद्धार स्पष्ट है, ऐसा सुना जाता है कि पण्डित बाबा ने अन्त्यावस्था में सन्यास ग्रहण किया था और तदनन्तर काशीके लक्ष्मीकुण्ड पर कालीमठ की स्थापना की थी जिसमें श्री कालीजी की मूर्ति आज भी विद्यमान है, और अद्यावधि भाद्रशुक्ल पूर्णिमा (प्रौष्ठपदी) को उक्त मठ के महन्त मेरे घरपर आराधना में आकर भिक्षा करते हैं सन्यासग्रहणके बाद के स्तोत्रों में बाबा ने अपना नाम केवल ज्ञानानन्द लिखा है।

ऐसे स्तोत्रों में—आद्यास्तवराज १ श्यामास्तवराज २ और बगलामुखी स्तवराज३पूर्ण मिले हैं,और जिसका आदिम पद्य यहहै—

१ पञ्चतत्त्वसपर्या है,

"वामे षट्कोणवृत्ते वहि रपि चतुरस्रीकृतेऽर्घ्यामृतेना
भ्युक्ष्याधारादि शक्तेर्यजन मिह महामण्डले तन्निधाय।
मग्वन्हे र्मण्डलाये स्यपिच दशकलाद्यात्मने चार्नमोन्तैः,
कुम्भं फट्कार मूर्द्धं तदुपरि वसनै र्भूषये द्रक्तमाल्यैः" ॥ १ ॥

यह सपर्या बहुतेरे मन्त्रों से भरी है और प्रायः ४० श्लोकों में में पूर्ण हुई है शार्दूल विक्रीडित छन्द है।

२— आकाशवासिनी सपर्या।

इसका आदि पत्र जिसमें ४ श्लोक प्रथम के थे नहीं मिलता, दूसरे से चौथे पत्र तक पूरे मिले हैं, इसके पूर्तिका २८ वां श्लोक यह है—

"विचार्य्या चार्य्याणां निगमविहितं पद्धति-मतं—
मुदे त त्त त्कौलव्रतनिरत कौलव्रतजुषाम् ।
इयं "ज्ञानानन्द" द्विजवरनिबद्धा त्मवचनैः
सपर्य्या पर्य्याप्तिं भृश मुपगता काशवसतेः" ॥ २८ ॥

३-असितादिविद्यापद्धतिः ।

यह ग्रन्थ तान्त्रिक रीति से सम्पूर्ण लिखा गया है । इसके १३ पत्रे हैं इसके अन्त में अर्द्धपद्य यह मिलता है—

"भाद्रे सम्वति शोणिते गुह-तिथौ कृष्णे बुधे वासरे,
"ज्ञानानन्द" मनीषिणा विरचिता गा त्पद्धतिः पूर्णताम् ।"

और ऐसा ज्ञात होता है इसी असितासपर्य्या को श्लोक बद्ध बनाया है जिसकी पूर्ति ११ पत्रों में ५१ श्लोकों में की गई है, इसके भी अन्त में पूर्वोक्त पद्य कुछ फेरफारकर इसप्रकार से उल्लिखित है

"विचार्य्या चार्य्याणां निगमविहितं पद्धतिमतं,
मुदे ताव त्तत्क्रमनिरतकौलव्रतजुषाम् ।
इयं "ज्ञानानन्द"—द्विजवरनिबद्धात्मवचनैः
सपर्य्या पर्य्याप्तिं भृश मुपगते ह्यासितनोः ॥ ५१ ॥
सम्वत् १७३९ भाद्रासितसप्तम्याम् ।"

४-कालरात्रिविधानम्—इसमें अनुष्टुप् छन्द के १०३ श्लोक हैं और-"संवत् १७३५ फाल्गुने शुक्लपक्षे तृतीयां लिखितम्" इसके अनन्तर कहीं से पूजाविधान भी उद्धृत करके लिख दिया है जो किसी तान्त्रिक ग्रंथका ज्ञात होता है ।

५-गुह्य षोढा विवरणम् ।

इस ग्रन्थ में पहिले १३ श्लोकों में से एक नमूना पेश करता हूँ-

त्रियाविश्रुत "विश्वनाथ" तनयः श्रीमत्सदाचारवित्,
"कस्तूरी"तनुज श्च यो "मधुकर" स्तस्या त्मजेन स्त्रयम् ।
इत्येकादशवासरोचित इह व्यालोड्य तत्पद्धतिं,
"रामानन्द"-मनीषिणा विरचितो नामक्रियानुक्रमः ॥ २४ ॥

अच्छा अब विवाह पद्धति का भी मङ्गलाचरण लीजिए—

स्वस्तिश्रीमत्प्रशस्तिप्रकरपरिलसद्दृव्यभव्यप्रबन्धै,
रुन्मीलद्गोत्र वर्णावलिभि रनुपमा माशिषां राशिभिश्च ।
नत्वा पाशाङ्कुशाढ्यं करिपतिवदनं मुग्धसिन्दूरसान्द्रं,
"रामानन्द" त्रियाठी परिणयनविधेः पद्धतिं व्यातनोति ॥ १ ॥

इसमें गोत्रोच्चारादि प्रकरणमें विशेष पाण्डित्य दरसानेही के कारण इस गुन्थ की टीका स्वयं लिखनी पड़ी है ऐसा अनुमान होता है, जो कि टीका के मङ्गलाचरण से स्पष्ट है—

"पूर्वाचार्य्य निवद्धपद्धतिततीरालोड्य शास्त्राम्बुधे-
र्वाग्दैवत्य मदभ्रविभ्रमकरं सम्भाव्य शुभ्रं महः ।
एतस्यां निजपद्धतौ परिलसद्गूढोक्तिसन्दीपनं,
"रामानन्द" मनीषिणो पनयन व्याख्यान मारभ्यते" ॥

पर वही पुराना रोना इसमें भी खण्डित होने का गाना पड़ता है, ऐसा मालूम पड़ता है कि षोडश संस्कारों की पृथक् २ पद्धतियाँ बनी थी क्योंकि श्राद्ध प्रकरण में-नान्दी, क्षयाह, पार्वण, एकादशाह, अन्वष्ट का (मातृनवमी श्राद्ध) गयापटल आदि के छिन्न भिन्न पत्रों की भरमार है, एतद्भिन्न जलाशय आरामादि केभी उत्सर्ग की पद्धतियाँप्राप्त हुई हैं जिसकी अंतिम सूचना इस प्रकारसे दीगई है ।

"स्वस्तिश्रीविक्रमार्कक्षितिपतिसमयातीतसम्वत्सरेषु,
प्रख्यातार्थेषु लोकाम्बुनिधिकुभि रपि प्रोक्तमानान्वितेषु ।

"रामानन्दो" मनीषी व्यलिख दखिल मध्यम्मसां कर्महेतो,
रुत्सर्गं मार्गशीर्षे रतिरमणतिथौ मङ्गले शुक्लपक्षे" ॥ १ ॥

पूर्वकाल के विद्वानों में कर्मकाण्ड की विशेषता बड़ी मात्रा में होती थी अपने ही पिता और पितृव्यादिकों की कर्मनिष्ठा अब हम लोगोंमें लुप्त प्राय होती जा रही है, तब वे सब बातें कर्तव्य समझी जाती थीं पर अब उनका नाम ढोंग पड़ा है, अस्तु इस विषय को अब यहीं छोड़ देता हूँ-क्योंकि दूसरों कीभी कुछ खबर लेनी चाहिए

९ "**लिङ्गानुशासन**" नाम का कोई ग्रन्थ कोष में बनाया गया था क्योंकि अमरकोश की प्रसिद्ध रामाश्रमी टीका उक्त पंडितबाबा के हाथ की लिखी मेरे पास वर्तमान है—ऐसा ज्ञात होता है कि कुछ उसीके परिशिष्ट अंश की पूर्ति करने को यह नूतन लिङ्गानुशासन लिखा गया होगा, वह ग्रन्थ तो उपलब्ध नहीं हुआ पर उसकी टीका ही जो स्वयं भी खण्डित है उसका पता बताती है—यथा—

"नत्वा विश्वेश्वरं देवं, स्वीयलिङ्गानुशासने ।
"रामानन्देन" विदुषा, टीकेयं तन्यते शुभा ॥ १ ॥

१० '**छन्दोरत्नाकर** नामक ग्रंथ छन्द विषयक है,ज्ञात होता है कि उक्त ग्रंथ में वृत्तरत्नाकर से बढ़ाकर प्रस्तारादि का उल्लेख किया गया है, पर आद्योपान्त सम्पूर्ण ग्रंथ बिना पढ़े उसपर समालोचना लिखना धृष्टता है, अतः उसका मंगलाचरण भेंट करदिया जाता है--

"नत्वा वाच मचिन्त्यशक्ति विलसत्सद्गद्यपद्यामृत-
प्रोन्मीलद्बहलप्रमोदजनने कल्पात्मिकां वीरुधम् ।
कुम्भों नेकमुनिप्रणीतविविधाँ स्तत्तप्रबन्धा नपि,
व्यालोक्य प्रतिपत्तये कविगिरां रत्नाकरं छन्दसाम्" ॥ १ ॥

१३ वृक्षपीयूषम् यह ३८ पत्रों में पूर्ण हुआ है इसके आदि के २१ पत्र अलभ्य हैं पर २२ वें पत्र में वृक्षान्योक्तियाँ—जिनमें चन्दन, चम्पक, माकन्द, जम्बू, पनस, मधूक, बिल्व, नारिकेल, खर्जूर, बदरी, लवली, धात्री, उदुम्बर, शाल्मलि, पूग, निम्बू, वट इत्यादि का वर्णन है, ततः परं माध्वी, लवङ्गी ताम्बूलवल्ली आदि लताओं की स्तुतियाँ दी गई हैं, फिर वायु वर्णन प्रस्ताव है, तदनन्तर नवरस निरूपण प्रस्ताव लिखा है। आगे चलकर कीर्ति प्रस्ताव दानप्र० विदायप्र० राजसेवनप्र० प्रकीर्णक प्र० चित्रकाव्य प्रस्ताव और समस्यापूर्ति प्र० आदि लिखे गये हैं—

थोड़ासा रसास्वादन करलेना असङ्गत नहीं होगा—अच्छा पहिले आम ही चूस लीजिए तब पान सोपाड़ी लाची से पूजा सन्मान किया जायगा—

'रसाल ! किं मचीकरः किल भवान पूर्वं तपो,
गुणप्रकर मीरितुं न खलु शक्यते मादृशैः।
यथा तव पचेलिमामृतफले रसः पीयते,
तथा न तरुणीजनाधरसुधोद्भवा माधुरी ॥ २३ ॥
यच्छाखाङ्कुतमञ्जरीमधुझरी पीयूषसम्भाविता,
सौरभ्यै रिह चञ्चरीकपटली मारा त्समाकर्षति।
सद्रामाधरबिम्बवद् युवजनैः पेपीयते यत्फलं,
माकन्दद्रुमवद् द्रुमान्तर महो ! लोके न लोकामहे" ॥ २४ ॥

आम पर दो पद्य और भी हैं पर अब आप सोपाड़ी लेकरभांजे

"उपायनं यद्धि महत्तराणां, भुजङ्गवल्ली दलराग वर्द्धनम्।
गणेश-गौरी-कलशक्रियान्वितं, फलं न पूगीफवत्फलेषु" ॥ २ ॥

अच्छा पान लाची भी खा लीजिए तब आगे चला जावे—

"बन्धूकप्रसवारुणाधरदले रागोदयं बिभ्रती,
दम्पत्यो विरतिं न यच्छति पुन र्या चुम्बनालिङ्गने।
सत्सौरभ्यसुखास्पदैकनिलया, लीकामानलोद्दीपिनी,
लोकेऽस्मिन्न लताभवेद्गुणमयी ताम्बूलवल्लीसमा' ॥ ५१ ॥
"यद्यपि परिमलपटलै, रुर्वी परिमण्डिता तदपि।
सकल सुगन्धगुणाना, मेला वेला मिवोद्वहति ॥ ५४ ॥"
अब अन्तका श्लोकत्रय निवेदित है, जिससे ग्रंथकार का परिचय और संवत मितिका पता लगता है।
"देशो यस्य वशिष्ठओत्तरभावः शाण्डिलगोत्रं स्थित,
ख्याता यस्य कुले त्रिपाठिपदवी वृत्ति विशेनान्वयात्।
यत्तातः श्रुतिपारगो मधुकर स्तस्या त्मजै निर्मितं,
"रामानन्द" बुधैः सुभासु विदुषां पीयूष मास्तां मुदे ॥ ५२ ॥
खबाणमुनिमेदिनी कलितवत्सरे (१७५०) वैक्रमे,
तथा शरकुषट्कुभि त्रिगुणिते शके शोभने।
सिताश्विनगुरो दिने शुभतरे दशम्यां तिथा,
बनायि परिपूर्णता ममृतकाव्य मेतच्छुभम् ॥ ५३ ॥
आत्महेतोः परस्यापि, कृतं प्रस्तावयुक्तिभिः।
पीयूषाख्य मिदं काव्यं, सत्स्वान्तेष्व मृतायताम्' ॥ ५४ ॥

१४ **रामचरित्रम्**—इसमें बाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड की कथायें ललितपद्यों में और दोहा चौपाई आदि हिन्दी के प्रचलित छन्दों में वर्णित हैं, यह ग्रंथ सीता वनवास तक मिला है मालूम नहीं कि आगे भी लिखा गया है या नहीं वरन कुछ भाग सुन्दरकाण्ड का पृथक् प्राप्त हुआ है, पर वह तो ऐसा ज्ञात होता है मानो तुलसीकृत रामायण जो कि सम्भव है उस समय में बहुत

"प्रातः पद्मासनस्थः शिरसि परिलस च्छ्रीसहस्राम्बुजान्तः,
प्रोन्मीलच्चन्द्रबिम्बस्थलगतविमलज्योति जाग्रन्त्रिकोणम् ।
हंसाख्ये तत्र पीठे वर मभयकरं रक्तशक्यो पविष्टं,
शुक्लालङ्कार शुक्लाम्बरधर ममलं श्रीगुरुम्भावयामि" ॥ १ ॥

श्लोकों के अनन्तर गद्य में मन्त्रों का विवरण और समन्त्रक करन्यास अंगन्यास आदि लिखे हुए हैं।

इसी तरह पर अनेक तान्त्रिक यन्त्र मन्त्रादिक भी स्फुटपत्रोंपर लिखे मिलते हैं, जिन सबका लिखडालना असम्भव नहीं तो दुस्तर अवश्य ही है।

पाठक महोदयों से सानुरोध निवेदन है कि आधुनिक विज्ञजन इन विषयों को केवल मनोरञ्जन ही की सामग्री न समझें अच्छे सदाचारी गुरु के सेवन बिना इन सबका रहस्य नहीं समझा जा सकता और न इन बातों का चमत्कार ही दृष्टिगोचर हो सकता है।

साहित्य—

१२ **रसिक जीवनम्**—यह ग्रंथ नायिका भेद का है इसमें 'रसमञ्जरी' आदि की चाल से दशविध नायिकाओं के लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं, फिर दूसरे तरंग में नायक भेद है और नायक-सहायक पीठमर्दादि के उदाहरण दिये गये हैं तदनन्तर तृतीय त० में शृंगार निरूपण, चतुर्थ त० मान निरूपण, पञ्चमत० प्रवास निरूपण, षष्ठत० विप्रलम्भशृंगार निरूपण, और सप्तमत० हावभावाद्यलङ्कार निरूपण किया गया है। मूल ग्रंथ में ३१ पत्र हैं इसपर भाषानुवाद यथामति मैंने लिखा है, इस ग्रंथ को भी **केशठेश वेंकटेश** ने अपना नाम बदलकर छपवाया है जिसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। यह मङ्गला चरण है।

"गंगाम्भोबिन्दुरिङ्गत्पटुतरलहरीलास्यलीलाभि रिन्दोः,
सन्दोहै श्चन्द्रिकाणां किमपि सपुलकं सान्द्र मुद्दीपितस्य।
कान्तायाः कान्तकण्ठस्थलवहलभुजाश्लेषमुग्धा विलासाः,
कल्याणं वर्द्धयन्तां प्रियसुखवसते रर्द्धनारीश्वरस्य" ॥ १ ॥

यद्यपि यह ग्रंथ शृंगार रस का है, तथापि कविता की सरसता अवश्यमेव दर्शनीय है अतः एक अवतरण विट का सुनिए—

"मरीचिरुचिसञ्चयै श्चपलचञ्चुकोटीभृतः,
समुल्लसति चन्द्रमा श्चपलयंश्चकोरा निह।
मरुचलति शीतलो रटति चञ्चरीक श्चिरं,
भविष्यति हि निश्चल स्तव स चण्डिमानः कथम्!" ॥ १५ ॥

इसके विशेष उदाहरण देने से ग्रन्थ के बहुतरे अवतरणों का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है, अतएव केवल एक अन्तिम पद्य जो कि सप्तम तरंग का है—उधृत कर दिया जाता है, यदि रसिकजन कृपया इस ग्रन्थ को जिसपर मैंने टूटी फूटी भाषा में पद्यानुवाद भी लगाया है आद्योपान्त अवलोकन करने की दया दरसावें तो छपवाकर सेवा में उपस्थित किया जावे। इस ग्रन्थ के अन्त में संवत् मिति नहीं लिखी है, इससे अनुमान होता है कि कुछ और भी लिखने का विचार—ग्रन्थ कर्ताका रहा होगा नहीं तो अष्टक और स्तोत्रोंमें पञ्चांग लेखक इतने बड़े ग्रंथको खाली क्यों छोड़ देते—अच्छा अब विहृत (भाव) का उदाहरण लीजिए।

कन्दर्पोल्लासलीलाविलसितवहलामोदसम्पद्विचित्रा—
तिर्य्यक्सम्भाव्यनेत्राम्बुज मतिललितं वाच माचम्य भर्त्तुः।
ह्रीगर्भा स्वा मवस्था मवनतवदनच्छ्मना व्यञ्जायन्त्या—
स्तन्व्या स्तन्नात्र चित्रं विहृत मपहरत्य न्तरं कस्य पुंसः ॥ २३ ॥

नवीन ही रहा होगा उसीके आधार पर काव्य स्वरूप लिखा गया है, अस्तु कुछ कुछ थोड़ासा अवतरण देखना चाहिए—

"जलबुद्बुद मखिलं जगद्, गच्छत्या यु रिदं हि।
"रामानन्द"—विवेकतो, रामनाम सुखदं हि ॥ १ ॥

उत्तरचरित मिदं हि स,—च्छन्दोभि र्विविधं हि।
प्रभवतु राममुदे सदा, "रामानन्द"-कृतं हि" ॥ २ ॥

अब रावण जन्मका वर्णन सुनिए—जो त्रिभङ्गी छन्द में हैं।

"भीषणदशवदनं भीषणरदनं भीषणविंशतिलोचनकं,
भीषणभुजदण्डं रणभुवि चण्डं रिपुखण्डन मरिभयजनकम्।
रक्षःकुलपालं, प्रकृतिकरालं भूपालं क्रव्यादकुले,
रावण मतिगर्वं सतत मखर्वं सा सुमालितनया सुषुवे ॥ १० ॥

यह एक छोटासा काव्य ही है बहुत कुछ सुन्दर पद्य लिखे जा सकते हैं, पर अब एक प्रकरणकी इति से उद्धरण स्वयं कह देगा कि कविका मनोगत भाव क्या है।

'काव्ये वाल्मीकिबद्धे यदिह विरचितं वर्त्मनैं तेन बुद्ध्वा
तस्मा दुद्धृत्य सारं निजमतिविभवा द्यद्धि लब्धं तु तस्मात्।
नानाछन्दोवितानैः पठितु मवसरे पाटवैः सत्कवीनां—
"रामानन्दै" र्निबद्धो भवतु रघुपतेः प्रीतये काव्यबन्धः ॥ ११ ॥

प्रायः प्रत्येक सर्गान्त कथाओंकी इति इस प्रकार से की गई हैं।

"इत्युत्तरगतरामचरित्रं, वैदेहीवनगमनपवित्रम्" ॥ १२ ॥

अब इसी प्रकरणमें जरा सुन्दरकाण्ड की भी सुन्दरता का मजा ले लीजिए। "यस्यां सीतार्थ मुद्योग—स्तरणं वारिधे रपि।
सङ्कादाहादिक ञ्चैव, सौन्दरी सोच्यते कथा ॥ १ ॥
नश्वर मिद मिति तत्त्वतः संसारं कलयन्ति।
तदपि न हरि मिह तत्त्वतो, "रामानन्द"! भजन्ति ॥१॥

"उद्यल्लाङ्गूलदण्डः स्फुरदुरुरसनो भुग्नदंष्ट्राकरालः
पिङ्गाक्ष स्ताम्रवक्त्रः परिघसमलसद्दीर्घदोर्दण्डचण्डः।
विस्तारायामतो यत्तनु रपि दशकं योजनानां सत्रिंशद्
वेगा त्सोयं हनूमान् विहगपति रिव व्योममध्यं जगाहे॥ ३॥

"अथ विलङ्घ्य योजनशत मब्धिं,पुनरपि कपि रभज त्तनुवृद्धिम्।
तदनु लघुः शिथिलीकृतखेदे, दशकन्धरनगरी मभिपेदे॥
विविधविविधवनराजिविचित्रा, नन्दनवनरचने व पवित्रा।
सरलासनकरवीरकदम्बा, कुटजकेतकीचम्पकवृन्दा॥
सतच्छदखर्जूरसमृद्धा, सहसहकारपनसतरुविद्धा।
कोटिकोटिरजनीचरजुष्टा, कनकपुरीबहुतरसुखपुष्टा॥"

"दशाननस्यात्मज इन्द्रजिद्वै, दशाननप्रेरित आजगाम।"

"ब्रह्मास्त्रेण निबध्य वायुतनयं नीत्वा दशास्यान्तिकं,
पप्रच्छ स्वयमेव राक्षसपतिः क स्त्वं कुतः कस्य वा!।
सुग्रीवा न्मिलनं हि वालिविजयं रामाङ्गनादर्शनं
वृक्षोत्पाटन मद्भुतं कथिवा न्दूतत्व मव्याहतम्॥"

बस कहां तक लिखा जाय अब दूसरों की भी खबर लेनीचाहिये।

४ **कटाक्षशतकम्**—यह शतक केवल १८ श्लोक मिला है—

"नीलाञ्जनोत्कटविषै र्विषमीकृतानि,
तिग्माग्रमार्गण-गणव्यथितान्तराणि।
वामभ्रुव स्तदपि वाञ्छति हृत्सरोजं,
हा हन्त! सस्मितकटाक्षनिरीक्षितानि"॥ १५॥

५ **धन्यशतकम्**—इसके भी १३ श्लोक ही मिले हैं-यद्यपि इसमें अश्लीलतादोष आ गया है पर जो कुछ है छिपाया नहीं जा सकता—इसका चतुर्थपद प्रत्येक में एक सा है।

"अव्यक्ता मभ्यसन्ती मिव हि नहि नही त्यादिकन्दर्पकक्षां,
मा मा मामेति मामेत्यभिलपित लसत्कामसंग्रामदक्षाम्।
"रामानन्दा" ननाङ्गोत्कटभृकुटितटाकुञ्चनं भावयन्तीं,
धन्याः केचिद् भजन्ते निधुवनमुदिताः कामिनीं यामिनीषु ॥१३॥

६ **शशाङ्कशतकम्**—इसके भी केवल १५ श्लोक प्राप्त हुए हैं इसमें चन्द्र-कलंक पर उत्प्रेक्षायें की गई हैं-यथा—

"विलसति हिमकरबिम्बं,राजत मिव भाजनं पुरतः।
शालग्रामशिले यं, मध्यगता लाञ्छनव्याजात्॥ १३॥
इन्दो रखगडबिम्बं, शिवलिङ्गं स्फाटिकं जयति।
विल्वीदलभरपूजित, मिवरत्या लाञ्छनं भाति॥ १४॥
कामेना म्बरभूमौ कन्दुक एषोऽ म्बरे रन्तुम्।
उच्छालित इति मन्ये, गुम्फितोऽसितेन पङ्केन॥ १५॥
पायसपिण्ड श्चन्द्रः, तत्र कलङ्क स्तिलप्रक्षेपः।
विष्णुपदे किल दत्तो, रत्या कामाय कान्ताय॥ ११॥"

यह अन्तिम श्लोक एक स्फुट पत्र पर मिला है इसमें **विष्णुपद** शब्द द्व्यर्थक होने से मनोहर श्लेष है।

एतद्भिन्न बहुतसी स्फुट कवितायें जो मिली हैं उनका उल्लेख करने से यह लेख बहुत मोटा हो जायगा अतः उन्हें छोड़ ही देना पड़ा।

७ **हास्य सागरः**—यह एक छोटा सा प्रहसन है इसका नान्दी (मङ्गलाचरण) यह है।

"उन्मीलत्पुण्डरीकप्रचुरतरपरीणाहकर्णान्तकान्ति,
नीलाम्भोजन्मकल्पाञ्जनरसविसरप्रोल्लसत्खञ्जनश्रीः।
द्रष्टुं कान्ताननेन्दो र्द्युति मतिचकितप्रेक्षितै रुल्लसन्तीं,
पार्वत्याः शर्महेतोः परिणयसमये कापि दृग्भङ्गि रास्ताम्" ॥ १ ॥

नान्द्यन्ते सूत्रधारः ।

"एतेषां पण्डितानां पटुतरकटुकव्यञ्जिकापञ्जिका स्तां,
वाचाला स्तात्र देते दधतु जडधियो मूकतां वावदूकाः ।
गङ्गाकल्लोलकल्पाः सपदि सुकृतिनां सज्जनानां समाजे,
"रामानन्द"द्विजानां यदवधि सरसा वाग्विलासाः स्फुरन्ति"॥२॥

ऐसा मालूम पड़ता है कि जिस समय औरंगजेब काशी के देवमन्दिरों को तोड़वाता था उसी जमाने में खिन्न चित्त होने से यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है इस बात का प्रमाण यह है—

"हन्यन्ते निर्निमित्तं सकलसुरभयो निर्दयै म्लेंच्छजातै,
दीर्य्यन्तेऽमी सदेवाःसकलसुमनसा मालया श्चातिदीर्घाः ।
पीड्यन्ते साधुलोकाः कठिनतरकरग्राहिभिः कामचारैः
प्रत्यूहै स्तैः क्रतूनां समय मिव जग त्पामराणां कुमारैः" ॥ ८ ॥

यद्यपि दृश्य काव्योंमें अभिनय के लिए वर्तमान कालिक क्रियाओं का प्रचुर प्रयोग आवश्यक है—फिर भी इस श्लोक में वर्तमान क्रियाओं का प्रयोग अपने समय की घटनाओं को स्पष्ट कर रहा है—इसमें कलियुग को नायक बना कर उसके पुत्रों का विवाह वर्णित है जिसमें गोत्रोच्चारादि में लच्छेदार गद्यावलियां लिखी गई हैं अन्त में आशीर्वादात्मक पूर्ति इस प्रकार पर हुई है—

"आसारैः परिपूरयन्तु वसुधा मेते महावारिदाः,
कालेषु प्रतिवा (वत्) सरं फलवती शस्यै श्च पूर्णामही ।
गावः कामदुघा भवन्तु सुधिय स्सन्तु त्रयीनिर्भरा,
राजानः परिपालयन्तु पृथिवी मानन्दसान्द्राः प्रजाः" ॥ ५८ ॥

८ काशी कुतूहलम् ।

यह ग्रंथ बड़ा है पर खण्डित हो जाने से आद्यन्त का पता नहीं लगता । इसमें निम्नोक्त कुतूहल मिले हैं पञ्चक्रोशकु०दानकु०कालकु०

निर्धनकु० सुवंशकु० कुवंशकु० सार्थककु० अनर्थकु० सारमेयकु० काककु० क्रोडकु० दुर्जनकु० काणकु० स्नेहकु० मोहकु० विप्रद्रोहकु० और जम्बुककु० आदि कोई छोटे कोई बड़े लिखे गये हैं, सबों का उदाहरण तो ग्रन्थावलोकन ही से मिल सकता है, पर दो चार अवतरण निवेदित किये जाते हैं।

"तत्रोचितनर्तनलीलौघं, पश्यन्त्या कर्ण्यं च वीणौघम्।
नानातालध्वनिसङ्गीतं, कुरुते जनचित्तं सुप्रीतम्" ॥ २ ॥

इस पंचक्रोशकु० से पता लगता है कि अब तक फाल्गुन की शुक्ला द्वितीया को जो ठाकुर जी की यात्रा होती है, उसमें उस समय भी गान मंडली और लीलामंडलियां जाती थीं। पुनः

"शङ्का यत्र न संसृते स्त्रिजगतां रङ्कायते चान्तकः,
कालव्यालविषादभीतिरहिता यत्रोद्भवा जन्तवः।
नैशो यत्र कलिः कदापि कलुषव्यापारदीक्षाविधौ,
से यं किन्न निषेव्यते भगवतो भर्गस्य काशीपुरी? ॥१॥

अच्छा अब दानकु० और कालकु० का भी आस्वादन आवश्यक है।

"इद मेव खलु भवसागरे, करणीय मस्ति चिरेण।
पिब भुङ्क्ष्व देहि गृहाण भोः, किमु कर्मणे ह परेण ॥ ३ ॥
धन मेव दाननिदान मत्र, ददाति नो कृपण स्तु।
इति वक्ति "रामानन्द"गी, स्वयमेव पापनरोऽस्तु ॥८॥ (दानकु०)

"येषु येषु विषयेषु ममत्वं, तेषु तेषु नश्वर मिति तत्त्वम्।
यदि नश्वर मिद मखिल मखण्डं,भज हरि मिह भवतरणतरण्डम्" २
प्राणतत्व मिह यस्य हि वश्यं, तस्य योगफल मखिल मवश्यम्।
कुण्डलिनीचालनमतिधीरः, प्रभवति भुवने सुभगशरीरः ॥७॥
कालकुतूहल मष्टकसारं, गुरुमुखतः कलयति भवपारम्।
रक्षति जन्मजराभयभीतं,"रामानन्द" मनीषिविगीतम्" ॥६॥(कालकु०)

बस और भी कुतूहल ऐसे ही मनोरञ्जक हैं पर उनके लिये पाठक वर्ग से क्षमा प्रार्थी हूँ।

९ किरातभावार्थदीपिका—यह प्रसिद्ध किरातार्जुनीय काव्य की संक्षिप्त टीका है कुछ छिन्न भिन्न होने पर भी प्रायः सम्पूर्ण है इसके अथ का तो पता नहीं लगता पर इति की बात सुनाता हूँ।

"मूलार्थैकनिबन्धना सहृदयानन्दैकसन्दोहदा,
मन्दारद्रुममालिकेव सुखदा सर्वार्थदा सर्वदा।
"रामानन्द"विनिर्मिता कतिपदैर्गूढैरगूढीकृता,
सेयं भारविसूरिकाव्यविवृत्तिर्भूयात्सतां प्रीतये" ॥ १ ॥

१० काव्य प्रकाश प्राकृतार्थः।

इस ग्रंथ में काव्यप्रकाश के प्रत्येक उल्लास के प्राकृत पद्यों का संस्कृतार्थ स्पष्ट किया गया है और यह सम्पूर्ण है—इसका मंगलाचरण यह है।

"गलन्मदलसद्गण्ड-मिलन्मैलिन्दमेदुरम्।
वेतण्डतुण्डमानन्द-कन्दं वन्दे शिवात्मजम् ॥ १ ॥
काव्यप्रकाशिकागूढ-प्राकृतार्थविवेचनम्।
"रामानन्देन" कविना, गुरुं नत्वा वितन्यते ॥ २ ॥"

काशीवासी पण्डित महादेवदत्त मिश्रजी (जो कि ४० वर्ष तक फलाहार करके गायत्री का पुरश्चरण करते रहे और सरयू पार गोरखपुर जिले के मझवली के राजगुरु थे) कहते थे कि यही पं० रामानन्दजी ने सन्यास लेने पर स्कन्द पुराणान्तर्गत प्रसिद्ध काशी खण्ड की संस्कृत टीका लिखी थी जो आज तक प्रचलित है, पर उसका कुछ पता नहीं लगने से हमने अपने काशीखण्ड की भाषा टीका की भूमिकामें जो कि बम्बई के श्रीवेंकटेश्वर

प्रेस में सं० १६६५ में छपी थी, "यतीन्द्र रामानन्द स्वामी" जी का नामोल्लेख कर दिया है पता नहीं कि यह रामानन्दी सम्प्रदाय के संस्थापक और प्रसिद्ध कबीरदास के गुरु, तथा पंच गंगाघाट की एक मढी में पाषाण पट्ट पर जिनकी चरण पादुका अब तक पूजी जाती है, वही महात्मा हैं, या और कोई दूसरे हैं, पर मेरे बाबा रामानन्द की ही लिखी होने में सन्देह है, जो हो बिना प्रमाण के मैं इस विषय पर विशेष कुछ लिखने में असमर्थ हूँ।

अच्छा अब अपने बाबा की रचित भाषा (हिन्दी) कवितायें भेंट करने की अनुमति चाहता हूँ यदि अप्रासंगिक नहीं मालूम पड़े तो थोड़ा समय दान की प्रार्थना स्वीकृत होनी चाहिये।

रामानन्द पी को एक कुहुक सतावै पिको कुहुक सतावै पिको कुहुक निकेत है, । कानन भनक भोर कानन भनक भोर कानन भनक भोर हू न कोउ देत है ॥ कंज विकसेरी हिय कँज कैसे विकसैरी विकसो विपिन क्यों विपिनको निकेत है। चित्तमें न चेत भई ऐसी हौं अचेत आली हरि चले चेत मेरो हरि चले चेत है ॥ १ ॥

गरद मिलायो दई गरद मिलायोदई गरद मिलायो तऊ चन्द न छपत है। पञ्चवान ही को लागे पंचवान हीको दूजे पंचवान ही को पिक पंचम जपत है ॥ नलिनी सलिल बिन जैसी मुरझानी सखि तैसी मुरझानो मन मीन सो चपत है। "रामानन्द" कवि जैसे ग्रीषम तपत तैसे पीय बिन आली विरहानल तपत है ॥ २ ॥

"रामानन्द" आइबे की गरज नहीं धो उत गरज नहीं धों इत गरज जनाए है। चंचल चलाए पै न चंचल चलाए पिअ (य) चंचल चलाए चित चंचल चलाए हैं ॥ चातक कसाई बैन पिअ के सुनाये पै न पिअ के सुनाये बैन पिअ के सुनाये हैं। मोर मतवारे पै न पिअ मतवारे आये घनस्याम आये पै न घनश्याम आये हैं ॥३॥

विरह झकोरो मन नेकऊ न उझकोरी औचक चकोरी बैन विषसी सुनाई है,। बाज आयो जिअ कैसे करि जीतिपरी जिअ "रामानन्द" चंद जिअ जारत जुह्राई है॥ चंचरीक चंचलरी देखि चित चंचलरी कियो चित चंचलरी तैहूं चंचलाई है। विरह सरदही में विरह सरदही में विरह दरद को सरद देन आई है॥ ४॥

भावै न तुसार जामे पुहुमी तुसार जामे पौनऊ तुसार वहै हिम को मजूस है। विरह दहन को तुसार न बुझावै सखि विरह दहन जीअ भयो आवनूस है॥ "रामानन्द" कवि पिअ दीपक पनूस है मेरी मूरति पनूस मेरे पिअ को पनूस है। सुखी दुखी लोगनि को सुख दुख जानिबे को आली यह पूस हिम रितु को जलूस है॥ ५॥

बिकसे सरोज पै न विकसैरी ही सरोज ही सरोज करै चित्त-चन्दसों चकोरी के। सुदिन मना ओधिके सुदिन मन आए सुदिन सुनाये पिक पंचम ठगोरी के॥ विविध सुगंध चीर "रामानन्द" दंपती सरीर मंडन करत मुख लै अबीर झोरी के। प्रीतम न मेरे आईबे की प्रीतम की मेरे प्रीत मन आए सखि आए दिन होरी के॥ ६॥

"रामानन्द" कीन्ही रितु रचना जमक की।

एक और भी खण्डित १० कवित्तों की पुस्तिका मिली है उसमें भी शृंगारही का शृंगार किया गया है यथा—

अजहूँलों वह काम केलि अलसानी बाल ऐसी छबि जाकी निसु दिन उर ठानिये। जाके पीत बरन कपोल के ऊपर छूटे अलक समूह भौंर भार से बखानिये॥ प्रगट कलुष हिअ गोपन करत ऐसी चंपल चकित चित चित में समाइये। परम प्रचंड पंचवान बान पावक सों विकल सरीर "रामानन्द" मनभाइये॥

अब कुछ शांत रस का भी आस्वादन कीजिये।

"हंसा काहू जात न जानो ?

यह तन मानस ललित केलि तजि औचक कियो पयानो।
देखत मात पिता परिजन सब तिनको कछु न बसानो॥
आइ नगरबासी भाई सब पलक एक पछितानो।
कहँ धो रह्यो कहाँ लों आयो फिरि धों कहा समानो॥
"रामानन्द" अमर यह खेचर छन में भयो बिरानो॥ १॥"

बस एक भजन और सुन लीजिये--

"साधो यह जग भरम भुलानो।

मात पिता बनिता सुत संपति विषम विषय लपटानों।
मैं मेरो अभिमान मोह बस माया रस बौरानों।
नहिं सूझै परमारथ को पथ निज सारथ अरुझानो।
"रामानन्द" नन्द नंदन तजि सेवत चरन बिरानो॥ २॥

यद्यपि भाषा में इनके बनाये हुए और भी कवित्त सवैया दोहा इत्यादि बहुतेरे मौजूद हैं, पर उन सबका उल्लेख करने से यह लेख बहुत बढ़ जाता है, संभव है कि पाठक महोदयों को अरुचि हो जाय, बस इसी डर से कुछ श्लोक जो कि राजाओं के वर्णन में लिखे हैं तथा उन राज दरबारों के शास्त्रार्थ में लिखे गये हैं उनका नाम मात्र उल्लेख कर देना है "पद्य पीयूष" ग्रंथ के अन्त में कवि ने "वृत्ति विशेनान्वयात्" लिखा है; ऐसा ज्ञात होता है कि, आपने सरयूपार (जि॰ गोरखपुर) के प्रसिद्ध विशेन कुलतिलक मझ-वली के राजा वोधमल्लजी के दरबार में जाकर वहां के पण्डितों से शास्त्रार्थ किया था, जो कि उनके भेजे हुए पत्र से स्पष्ट होता है, ऐसा अनुमान होता है कि, उस समय तक पिण्डी ग्राम का सूत्र लगा था जहाँ से कवि के प्रपितामह दिवाकर त्रिपाठी जी काशी में विद्याध्ययन के लिये आकर अन्नपूर्णा की कृपा से काशी ही में

निवास करने लगे थे और श्री विश्वनाथ के अनुग्रह से अपने पुत्र का नाम भी विश्वनाथ ही रक्खा था, जिनका उल्लेख कवि ने षोडशक्रियानुक्रम नामक ग्रन्थ में किया है । अस्तु अब प्रसंगान्तर न होने देने से राजस्तुति का लिखना आवश्यक है-सुनिए—

"वीर श्री बोधमल्ल ! स्फुरति तव करे नीलवर्णा सिवल्ली,
निर्णीता सा भुजङ्गी सकल कवि जनैः प्रोल्लसद्वाग्विलासैः ।
"रामानन्द" द्विजाते मनसि निविशते का पि शङ्का निसर्गात्,
तद्दष्टारातिवर्गः कलयति भुवने मुक्ति-मेत द्विचित्रम् ॥ १ ॥"

अच्छा अब कुछ प्रश्न मय श्लोकों को देख लीजिये ।

"आस्ते नूनं गतिश्चे त्कथयतु कुशली भूतले नास्ति कुम्भः,
कुत्र स्या दन्वयोऽस्य प्रथम इह पुनः कारके प्रश्न एषः ।
आख्याते कुत्र शक्ति र्भवति वदतु मा मुत्तरं चे ल्लकारे,
बुद्धि र्यादे दृढा चे द्यथ भजतु पदं सादरं मन्दतायाः ॥"

और भी कुछ स्फुट प्रश्नों का रूप देखिये—

"के युष्मद्गुरवः कि मस्त्य पि कुलं कः स्या त्प्रसङ्गोऽपि ते,
तेषा मध्ययनं कि मस्ति भवता किं तत्र वा धीयते ।
अन्तेवासिजनाश्च कत्य पि पुन स्त्वय्य स्ति तेषां दया,
"रामानन्द" मनीषिण स्त्व मधुना प्रब्रूहि प्रश्नोत्तरम् ॥"
"सच्छिष्येण निजाभिमानशमनं कृत्वा त्मना वाङ्मनः-
कायै रीश्वरभावना कुशलिना सुश्रूषितव्यो गुरुः ।
तत्कारुण्यकटाक्षकलितमतिः शास्त्रेषु वागीश्वरो,
"रामानन्द"-मते भवत्य नुदिनं चे त्प्रीति रुज्जृम्भते ॥"

इस प्रकार के प्रश्नोत्तर वाले पत्र पर २२॥ तक श्लोकाङ्क मिलते हैं आगे का पता नहीं है ।

अब केवल एक स्फुट पत्र का भी प्रश्न उपस्थित है ।

"का श्लाघ्या विदुषां धरावनकृते को वा कृतो वेधसा,
सम्बोध्यो नृजनः कथं कि मिह वा पुर्य्याः पदं वाचकम्।
किं स्या द्त्र विपूर्वकस्य सुकवे! कल्पस्य वोधे ऽव्ययं,
दाक्षीपुत्रमुनिप्रणीतमहिता त्सूत्रा द्वदा शू त्तरम्॥"

अब राजप्रशंसा-वाद आशीर्वादात्मक पद्यों को छोड़कर एक यति स्तुतिमय पत्राङ्ग को सुन लीजिये—

पत्रं वागीशभारती योग्यम् (सिरनाम इतना ही है)

"स्वस्तिश्रीभारतीनां प्रभवति भवती भारती यस्य कण्ठे,
नावद्यागद्यपद्यापटुचटुलपदै र्हृद्यविद्याविनोदैः।
वाचामीशे मुनीशे यमनियमसदाचारनिष्ठावशिष्टे,
"रामानन्दस्य" तस्मि न्नखिलगुणगुरौ स्या त्सहस्रं नतीनाम्॥१
कारुण्याद्वैत भावा दिह कुशल मथ श्रीमता न्त न्नितान्तं,
स्वान्ते सम्भावयामो वय महह! सदो दन्तचिन्ताभिपन्नाः।
संसारावर्तगर्त्ते सपदि सुखधिया दुःखमूले रटन्त—
स्तिष्ठामः को भिजाने विधिकृत मधुना वश्यभाव्यं किमास्ते॥२
कामं विन्द न्मरन्दं वहलपरिमलोल्लाससंयातरङ्गो,
दैवा दम्भोजगर्भा दुपरि परिगत श्चेतसा वद्धसङ्गः।
अस्मि न्नेवान्तराले हरिहरिदुरितोद्रेकझञ्झानिलेन,
प्रोद्भूतः क्वापि यत्र प्रभवति नलिनं वीक्षितुं नापि भृङ्गः" ३

इसी प्रकार के लेख और भी अनेक पत्रों में मिलते हैं उन सबका रसास्वादन तो बिना पुस्तकाकार के नहीं हो सकता। बहुतेरी किम्वदन्तियों (कहावतों) को भी श्लोकबद्ध कर डाला है जैसे—"कौआ नाक ले गया"—वाली उक्ति आज भी व्यवहार में कही जाती है यह उस पुराने जमानेसे ही प्रचलित थी इसका प्रमाण-
"छिन्ना नासा वायसेन प्रमादा-"दित्थं मोदा त्केनचि त्कश्चि दुक्तः।

मूढः कश्चिद् द्रायसा न्धावमानो, नासां स्वीयां न स्पृश त्यल्पबुद्धिः" ॥१॥

अब एक मूल सटीक भी सुना देता हूँ।

"नीतो वाह्यं केनचि द्ब्राह्मणेन, नागो दावा दंशुकान्तर्विलेन।
दष्टुं धाव न्मन्दधी रात्मदोषादु रामा(ज्ञाना)नन्द ! स्या त्खले न प्रतीतिः

"दावानल सों काढ़ि कै, उरग उबारयो जाहि।

ताहि डंसै जौं उरग खल, "नंद" पुकारिश्र काहि" ॥ २ ॥

हमारी समझ में पं० रामानन्द बाबा के विद्वत्ता का कुछ कुछ परिचय इन सब पूर्वोक्त ग्रन्थों के अवतरणों से तथा स्तोत्रादिकों की सुचीसे जिसका एक नमूना "श्यामास्तवराज" इस ग्रन्थके साथ है हमारे विज्ञ पाठक महोदयों को प्राप्त होगया होगा एतद्भिन्न जो कुछ उनके बनाये हुए प्रबन्ध अथवा ग्रंथ आज से प्रायः २५० सौ वर्षों में चोर कवियों या ग्रन्थकारों ने हथिया लिये हों और उसे चाहे अपने नाम से चलाये हों अथवा नष्ट भ्रष्ट ही कर दिये हों; उनका पता लगाना हमारी तुच्छ शक्ति के परे है, और उन सबका वृत्तान्त भगवान ही जान सकते हैं। यदि अवकाशानुसार उनके ग्रंथोंके मुद्रण का शुभ योग होगा तो सम्भव है कि कुछ संस्कृतज्ञ विद्वानों के मनोरञ्जन का अवसर प्राप्त हो सकेगा। आधुनिक ग्रन्थ प्रकाशक गणोंको प्रायः हिन्दी के उपन्यास गल्प अथवा कहानियों के छपवाने में जीविकानिर्वाह का रूप दीखता है। और वही दशा वेचारे मुद्रणालयाध्यक्षों की भी ठहरी, फिर अपने व्ययसे सब ग्रन्थों को छपाकर धर्मार्थ वितरण करने का सुयोग यदि प्राप्त हुआ तो अवश्य ही आप लोगों के कर कमलों में ये सब पूर्वोक्त ग्रन्थ भ्रमणायमाण हो सकेंगे, अस्तु अब केवल कवि के कुल परंपरा का उल्लेख कर देना आवश्यक है। और अन्तमें नैयायिक कवितापहारी वेंकटेशप्रसाद सिंह (बेशठ–जि० आरा) का एकरार नामा

अविकल उद्धृत कर दिया जाता है आशा है केवल उसीके दर्शन से हमारे पाठक महोदयों को सब तथ्य वृत्तान्त अवगत हो जायगाः—

प्रायः अकबर के बादशाही जमाने में मेरे पूर्व पुरुष पण्डित दिवाकर त्रिपाठी जी विद्याध्ययन के लिये इस काशी धाममें आये थे क्योंकि यह काशी क्षेत्र अनादिकाल से सर्वोच्च विद्यास्थान प्रसिद्ध है,इस बातको काशीखण्डमें भी प्रकट किया गया है यथाः—

"विद्यानां सदनं काशी, काशी लक्ष्म्याः परालयः।
मुक्तिक्षेत्र मिदं काशी, काशी सर्वा त्रयीमयी ॥"

वास्तव में काशी का विद्यापीठ होना अत्यावश्यक भी है, क्योंकि विना शिक्षित हुए ज्ञान नहीं होता और विना ज्ञानके मुक्ति लाभ भी नहीं हो सकता—"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" इसलिये काशीमें स्वयं विश्वेश्वर तारक मन्त्र देकर सभी जीवों को मोक्षाधिकारी दीक्षित बना देते हैं यह बात श्रुति–स्मृति–पुराणादि में प्रतिपादित है। अस्तु पं० "दिवाकर त्रिपाठी" जी ज्योतिष शास्त्रके बहुत बड़े ज्ञाता हुए, विश्वनाथ बाबा के अनुग्रह से उनके ज्येष्ठ पुत्र "विश्वनाथ त्रिपाठी" हुए जिनका बनाया हुआ "ग्रहलाघव" पर एक उत्तम तिलक है। उनके पुत्र "मधुकर त्रिपाठी" हुए जिनके ज्येष्ठ पुत्र "रामानन्द त्रिपाठी" और कनिष्ठ पुत्र परमानन्द त्रिपाठी थे पं० "रामानन्द" जी का जो कुछ इत्तिवृत्त ज्ञात हो सका है वह ऊपर लिखा गया है, उनके छोटे भाई पं० "परमानन्द" जी भी अच्छे विद्वान् थे, जिनके पुत्र पं०"सूर्यमणि त्रिपाठी"हुए। सुना जाता है कि ये बड़ेही कर्मनिष्ठ तपस्वी थे इनके पुत्र पं० "सनाथ त्रिपाठी" जो हुए, जिनकी योग्यता और विद्वत्ताके कारण कँतिथ के राजकुमार बाबू क्षत्रपति सिंह तथा उनके पुत्र देशपति सिंह और भर-

पूरा आदि तलुकों के बाबू लोग उनके दीक्षा शिष्य होकर अनेक ग्रामोंमें भूमि दिया है जो आज तक हम लोगों के पास वर्तमान है, उनके पुत्र पं० "गणपति त्रिपाठी" जी हुए उनको भी उपर्युक्त ग्रामोंमें कृष्णार्पण भूमि मिली है, इनका बनाया हुआ एक शिवालय लकसा पर बगीचेमें वर्त्तमान है। इनके तीन पुत्र हुए "गंगाप्रसाद" १ "दुर्गाप्रसाद" २ तथा "अयोध्याप्रसाद" ३ जिनमें पहिले दो भाई तो निरपत्य ही रहे पर पं० "अयोध्याप्रसाद" जी बहुत ही उच्च कोटि के विद्वान हुए अरबी फारसी के भी पूर्ण ज्ञाता थे इनको ब्रिटिश गवर्नमेंटने पहिले जज पंडित मोकर्रर करके पटना भेजा। वहां इनकी योग्यताने मुंसिफ और बाद को सदरसदूर (सदराला) पद तक पहुँचा दिया। इन्होंने बहुत कुछ उपार्जन किया और कईक ग्राम खरीद किया। पेंशन लेकर छ मास काशीवास करके गृहके सन्मुख हो एक विशाल शिवालय प्रतिष्ठित कर कार्तिक कृ० ६ को मणिकर्णिका तट पर प्राणायाम करते हुए इस अनित्य कलेवर का परित्याग किया। इनके तीन पुत्र थे ज्येष्ठ पं० "चन्द्रशेखर त्रिपाठी" जी मध्यम मेरे पूज्य पिता पं० "रमापतित्रिपाठी" जी (जिन्होंने एक बहुत बड़ा मन्दिर बनवाकर श्री लक्ष्मी गोपाल जी के साथ अनेक देव मूर्तियों की स्थापना की है) और कनिष्ठ पं० "चन्द्रपति त्रिपाठी" जी। पं० "चन्द्रशेखर त्रिपाठी" जी काशीके सर्वोत्कृष्ट विद्वान् थे उसकाल में काशीके महाराज श्रीमान् ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह जू (जी. सी. यस. आई.) उनके अनन्य विद्याभक्त थे स्वयं उनसे मिलते थे, महाराज की आज्ञा से उक्त पं० जी ने "काष्ठजिह्व स्वामी" की बनाई हुई "शिवचरण परिचर्य्या-" नामक ग्रन्थकी टीका बनायी थी जिसे उक्त पं० जी के शरीरत्याग के पश्चात् श्रीमान् महाराजा साहब ने मुझसे तलब किया कि

उनकी हस्तलिखित पुस्तक लाओ, हाजिर करने पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति से स्वीकार किया। यद्यपि वह पुस्तक छोटी ही है, पर महाराजानुमोदित होने से विशेष मान्य है नहीं तो उक्त पं० जी ने "शारीरिक सूत्र" अथवा "ब्रह्मसूत्र" पर वृत्ति "परिभाषेन्दुशेखर विचार," "श्लोकबद्ध अष्टाध्यायी" "पूजापुष्करिणी," "रामकथा" और "मत्स्यपुराण" की टीका आदि जो बड़े बड़े ग्रन्थों का निर्माण किया है, उनके समकक्ष नहीं है, अस्तु उक्त "पूजापुष्करिणी" ही से उद्धृत करके "पञ्चदेवस्तवाः" नाम से गणेश-सूर्य-विष्णु गंगा और काशी विश्वनाथ के पांच स्तोत्र सं० १६४४ में छपवा कर पंडितों की सभा करके स्मारक स्वरूप बांटे गये थे। पं० जी को केवल दो कन्यायें थीं, पुत्र नहीं था, और मेरे कनिष्ठ पितृव्य पं० चन्द्रपति जी तो निरपत्य ही थे। उन्होंने शिवरात्रि ही को व्रत करके निशीथ में प्राण त्याग किया था। मेरे पूज्य पिता जी का उन पर बड़ा स्नेह था। मैं चार भाई और दो बहिनें छवो सहोदर थे उसमें इस समय मैं अकेला बचा हूं, मेरे सर्व ज्येष्ठ भ्राता लक्ष्मीपति जी तथा सर्व कनिष्ठ उमापति जी की मृत्यु ने पिता जी को शोक जर्जरित कर दिया था। "हरे रिच्छा गरीयसी" अन्त तो गत्वा सं० १६४८ आषाढ़ शुक्ला नवमी को जब मेरे बड़े भाई विद्यापति जी २८ वर्ष के कुछ ऊपर और मैं १७ वर्ष कई मासका था पूज्य पिता जी ने भी महाप्रयाण कर दिया, यद्यपि उनकी अवस्था ७० वर्ष की थी पर वृद्धा माता जी को यत्परोनास्ति पति-पुत्र शोक का सन्ताप दग्ध करने लगा, जिससे वह प्रतिदिन सूखने लगीं पर परमात्मा की गति विचित्र होती है, सं० १६५० के कुवार बदी २ को मेरे घर में पुत्र उत्पन्न होने से उनका चित्त बहुत कुछ सुस्थ और स्थिर होगया चि० श्री काशीपति के जन्म के बाद प्रायः

१९ मास के सं० १९५२ पौष शुक्ला १० को भगवन्नाम स्मरण करती हुई उन्होंने भी इस असार संसार का परित्याग कर दिया। यद्यपि मैं मातृ पितृ विहीन हो गया था परन्तु मेरे ज्येष्ठ सहोदर पं० विद्यापति जी का मुझ पर अकृत्रिम सहज स्नेह बना रहता था, जिससे मुझे बड़ा सन्तोष होता था—यद्यपि मेरी छात्रावस्था पिता जी की मृत्यु ही ने समाप्त कर दी पर पठन पाठन का कुछ न कुछ व्यवसाय चलता ही रहा—अपने पूर्व पुरुषों के उग्र तप के प्रभाव से—"गृह कारज नाना जंजाला"—में फँसे रहने पर भी यथावकाश और यथामति थोड़ी बहुत सरस्वती की सेवा की इच्छा जागरूक रही जिससे—

१ **"रससर्वस्वम्"**—जिसमें रस विषयक सभी प्रकरण लक्षणों और उदाहरणों के साथ संस्कृत ही में संगृहीत करके लिखे गये हैं। (सं० १९५२ आषाढ़ कृ० १० मंगल)

२ **"काशीखण्ड"**—की भाषा टीका, जो कि श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बंबई में मूल के साथ सांचो पत्रों में और केवल भाषानुवाद पुस्तकाकार सं० १९६५ में छपकर बाजार में बिकता है, वरन उसी का एक अंग—"काशीयात्रा" अलग भी एक छोटे आकार में प्रचलित है। यह काशीखण्ड की भाषा टीका कैलासवासी काशी नरेश महाराजा सर प्रभुनारायण सिंह जू (के० सी० यस० आई जी० सी० यस० आई०) को समर्पण की गई है, और उनकी आज्ञा से उनका चित्र भी उसमें दिया गया है।

३ **वाराणसी माहात्म्यम्**—जो कि कूर्म पुराण के पांच अध्यायों का है, भाषानुवाद सहित पूर्वोक्त प्रेस ही में छप कर प्रकाशित हुआ है।

४ **महिम्नःस्तोत्र की पञ्चमुखी टीका**—जिसका उल्लेख पहिले हो चुका है छप जाने से प्रचलित है।

५ **नीति दृष्टान्तमाला**—इसमें दृष्टान्त सहित १०८ श्लोक हैं जिनका मूल हिन्दी दोहों में लिखित है पर यह अप्रकाशित है।

६ **श्रीविश्वनाथशतकम्** । ७ **श्रीगङ्गाशतकम्** । तथा ८ **श्रीकाशीशतकम्**—इन तीनों शतकों में प्रायः पाँच सौ श्लोकों का समावेश है पर ये सब अद्यावधि अप्रकाशित ही हैं।

९ **शृंगार तिलक-तिलक**—यह प्रसिद्ध महाकवि कालिदास कृत खण्डकाव्य मेरे भाषापद्य तिलक के साथ काशी के लहरी प्रेस में छपचुका है।

१०-**स्तोत्र पंचरत्न**-यह श्रीमत् शंकराचार्य के बनाये हुए-अपराधक्षमापन १ द्वादशपंजरिका २ चर्पटपंजरिका ३ पंचरत्नमालिका ४ और पंचाक्षर ५ स्तोत्रों के साथ भाषा पद्यानुवाद सहित उक्त लहरीप्रेस ही में सं० १९६५ में छपा है।

११ **वसन्त लता**—यह एक सामाजिक उपन्यास है जो कि पूर्वोक्त प्रेस ही में छप गया है।

१२ **भूकम्प काव्यम्**-इसमें गत वर्ष सं० १९९० की मौनी अमावास्या (ता० १५-१-३४) को भारत के प्रचण्ड भूडोल का श्लोकों में वर्णन है जो काशी के संस्कृत पाक्षिक पत्र सुप्रभात में क्रमशः प्रकाशित हो रहा है।

"एतद्भिन्न पं० बाबा रामानन्द त्रिपाठी जी तथा पितृव्यचरण पं० चन्द्रशेखर त्रिपाठीजी के निर्मित बहुतेरे स्तोत्रों पर तथा "रसिक जीवन" "शशाङ्क शतक" "धन्य श०" "कटाक्ष श०" इत्यादि पर जो भाषानुवाद बनाये गये हैं वे अब तक छपकर प्रकाशित नहीं होसके हैं, यदि मुद्रण में मुद्रा व्यय करने का सुयोग आजावे तो शीघ्र ही मुद्रित हो जावें। अस्तु इन सब वितण्डावादों को सूचित करने का मुख्य कारण वही पूर्वोक्त डांकाजनी ही है, न इस पुस्तक को कवियश: प्रार्थी वेंकटेशसिंह अपना बनाया हुआ लिखकर छपवाते तो इन पुरानी बातों को सुनाकर पाठक महोदयों का अमूल्य समय लेने का अवसर ही नहीं आता।

अस्तु "तन्नभवतिय दभाव्यं, भवति च भाव्यं बिना प्रयत्नेन।—" पहिले समाचार पत्रों में **रसिक जीवनी** की समालोचनाओं का

उल्लेख हो चुका है अब उत्तरार्द्धभाग भी सेवा में समर्पित करके यह लेख-विषय पूर्ण कर दिया जाता है, आशा है कि उदार पाठक महोदय सदय हृदय से जो कुछ प्रमाद अथवा त्रुटि किंवा अनौचित्य इत्यादि दोष ज्ञात व अज्ञात रूपसे हो गये हों उन्हें क्षमा करने का स्वाभाविक अनुग्रह करके मुझे अवश्य कृतार्थ करेंगे—

काशी का साप्ताहिक पण्डित पत्र वर्ष २ संख्या १

ब्राह्मण महासम्मेलन ता० २३ दिसम्बर सन् १९२९ ई० ।

परिमार्जन

श्रीयुत सम्पादकजी !

"ब्राह्मण सम्मेलन" पत्र के ५ अगस्त के अंक में "रसिक जीवनी" की समालोचना देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसके लेखक और अनुवादक का नाम था, जिला आरा केसठादि-ग्रामाधीश, बाबू वेंकटेशप्रसाद वर्मा का । उक्त बाबू साहब पं० नारायणपति त्रिपाठी, औरंगाबाद काशी निवासी से उनके पूर्वज पं० रामानन्द त्रिपाठी कृत "रसिक जीवन" और "विराड् विवरण" नामक ग्रंथ देखने के लिये कई वर्ष पहिले ले गये थे और बार बार उक्त ग्रन्थों को लौटा देने का सतत अनुरोध करते रहने पर भी उनके न मिलने का और खोजाने का बहाना करते रहे । "रसिक जीवन" नामक ग्रन्थ का कविता में भाषानुवाद भी पं० नारायणपति त्रिपाठी कृत था परन्तु "विराट् विवरण"में नहीं। उस दिन पण्डित पत्र में बाबू साहब द्वारा लिखित अनूदित तथा प्रकाशित "रसिक जीवन" का नाम देखकर उक्त त्रिपाठी जी ने उसे खरीदा । पुस्तक के अन्तिम पृष्ठपर "विराड्रूप निरूपणम्" का विज्ञापन देखकर वह मँगवाया गया । दोनों पुस्तकों के देखने पर पता चला कि कुछ इधर उधर साधारण परिवर्तन के उपरान्त जिनके कारण ग्रन्थों में अशुद्धियाँ उत्पन्न हो गयी हैं— उक्त बाबू साहब ने उन्हें अपने नाम से ग्रन्थकार बनने की अभिलाषा को न संवरण करने के कारण छपा दिया है । "रसिक

जीवन" का "रसिक जीवनी" और "विराट् विवरण" का "विराड् रूपनिरूपणम्" भी बाबू साहब ने कर दिया है।

पं० नारायणपति त्रिपाठी जी ने उक्त बाबू साहब पर "अमानत में खयानत" का मुकदमा चलाया क्योंकि मूल लेखक की असली हस्त लिखित प्राचीन प्रतियाँ पण्डितजी के पास थीं। परन्तु मुक-दमा प्रारम्भ भी नहीं हुआ कि बाबूसाहब ने समस्त छपी प्रतियाँ पण्डितजी को लौटा देने का तथा पुस्तकें और अनुवाद अपना न लिखा होने का इकरार नामा लिख दिया जिसकी रजिष्ट्री ता० १९ दिसम्बर १९२९ को काशी में हुई। अतएव पण्डितजी ने उक्त बाबूसाहब पर से मुकदमा उठा लिया।

आशा है कि इस पत्र को आप अपने सम्मानित पत्र में प्रकाशित कर जनता को भ्रम से बचाने का सम्मान प्राप्त करेंगे।

रघुबर दयालु मिश्र (वैद्य भूषण)

यह सूचना ता० २० दिसम्बर १९२९ के "आज" पत्र में (जो काशी से दैनिक निकलता है) भाग २९ सं० ४१ संख्या-२७४९ और कानपुर के साप्ताहिक "प्रताप" पत्र के भाग १७। संख्या १० ता० २९ दिसम्बर सन् १९२९ में भी प्रकाशित हो चुकी है, आशा है इस लेख से पाठक महोदयों को सब बातें स्पष्ट ज्ञात हो जायँगी।

नकल एकरार नामा।

मनकि वेंकटेशप्रसाद सिंह वल्द राय साहब ठा० शंकरदयाल सिंह कौम क्षत्री सा० केसठ प० भोजपुर जि० शाहाबादका हूँ आगे मिन मोकिरने दो पुस्तक रसिक जीवनी वो विराड्रूपनिरूपण नामक विद्याविलास प्रेस बनारस में छपवाया है हर दो पुस्तकें मजकूरके बाबत पण्डित नारायणपतिजीने मिनमोकिर के खिलाफ दावा हसब दफा ४०६ ताजिरात हिन्द इस बयान से दाखिल किया है कि यह पुस्तकें उनके मूरिस पण्डित रामानन्द तिवारी जी की बनाई हुई है और रसिक जीवनी पर अनुवाद पण्डितजी मौसूफ का हैं और मिन मोकिरने उन पुस्तकों को बिला मनसब व अखतियार अपने नाम से छपवालिया है मगर मिन मोकिर का

ब्यान यह है कि यद्यपि वास्तव में यह पुस्तकें पण्डितजी मौसूफ की हैं लेकिन पण्डितजी मौसूफ से लेकर उनकी रजामन्दी वा इजाजत से मिन मोकिर ने पुस्तकों को अपने नाम से छपाया है चूंकि मुकदिमाबाजी से परेशानी जेरबारी वो नुकसान मालियती मिनमोकिर को मालूम होता है। लेहाजा मिन मोकिर ब सलाह अपने चन्द दोस्तों के बगरज रफा हुज्जत वो तकरार आइन्दा व बचाने सर्फ मोकदिमाबाजी यह मन्जूर कर लेता हूँ कि मिन मोकिर आइन्दा हर दो पुस्तकों को या उनके किसी अंश को किसी दूसरे रूप में भी अपने नामसे फिर न छपवायेगा पण्डित नारायण-पति तिवारी जी को पूरा अधिकार है कि इन पुस्तकों को अनुवाद सहित जिस तरह से और जिसके नाम चाहैं छपवायें और बेचें मिन मोकिर से कोई वास्ता वो सरोकार नहीं है, न आइन्दा होगा, जो कुछ पुस्तकें छपी हुई मिन मोकिर के पास बच गई थीं वह सब पुस्तकें पण्डित जी के हवाले कर दिया मिन मोकिर के पास मिनिस कुटर कापियाँ मौजूद नहीं हैं बल्कि खो व नष्ट हो गई हैं इस वजह से वापस नहीं की गईं पण्डित नारायणपति तिवारीजी ने भी बहक मिन मोकिर एक तहरीर अलहदह बतौर बाजीदावा हर किस्म के मोकदिमा दिवानी व फौजदारी दे दिया है इसतौर से जुमिला नेजाय दरमियान फरीकैन तैं हो गई अब कुछ बाकी नहीं है लेहाजा यह चन्द कलमा बतरीक अकरारनामा के लिखकर रजिस्टरी करा दिया कि सनद व वक्त जरूरत पर काम आवे। वाजह हो कि सफहा अव्वल में सतर दसके आखीर में हरूफ (ख) बालाय सतर है वह सही है ता० ११ दिसम्बर सन् १९२१ ई० ब० श्यामा किशोर। पण्डित नारायणपति तिवारी वल्द पण्डित रमापति तिवारी सा० औरंगाबाद शहर बनारस के हैं—

द० वेंकटेशप्रसाद सिंह बा० खुद

द० वेंकटेशप्रसादसिंह एकरारनामा लिखा सोसही बा०खुद (उर्दू में)

गु० सुखनन्दन पांडे बा० खुद

द० बाबू रामप्रताप सिंह बा० खुद

गु० भगवानदास बा० खुद

